कर्नल सुरेश विश्वास।

—कुमार ब्रजेन्द्रसिंह।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई।

कर्नल सुरेश विश्वास ।

[जीवन-चरित ।]

लेखक,—

स्वर्गीय कुमार ब्रजेन्द्रसिंह ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, बम्बई ।

कार्तिक, १९७६ वि० ।

प्रथमावृत्ति ।] अक्टूबर १९१९ ई० । [मूल्य ॥)
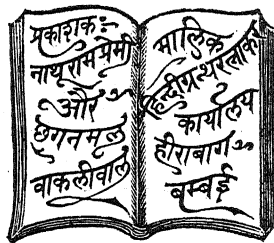
Printed by Chintaman Sakharam Deole, Bombay Vaibhav Press,
Servants of India Society's Home, Girgaum, Bombay.

स्वर्गीय पं० सत्यनारायण कविरत्न-

के

स्मरणार्थ ।

कर्नल सुरेशचन्द्र विश्वास।

कर्नल विश्वासकी पत्नी।

समर्पण ।

देशभक्ति जिनके जीवनको लक्ष्य सुहावन ।
जिन पर निरभर मानव-कुलको भविष्य पावन ॥
भेदभाव तजि जो स्वदेश-रक्षा-रँग राँचे ।
प्रिय आर्य्योचित धर्म कर्मके प्रेमी साँचे ॥
गहि सत्य न्यायको पक्ष जो, निज जीवन अरपन करत ।
तिन वीर नरनके चरनमें, भेंट अकिञ्चन यह धरत ॥

—स्वर्गीय पं० सत्यनारायण कविरत्न ।

स्वर्गीय कुमार ब्रजेन्द्रसिंहजी ।

चार शब्द ।

प्रिय पाठकगण,

लीजिये, यह एक क्षुद्र लेखककी तुच्छ और प्रथम भेंट है । मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि मैं विद्वत्तापूर्वक अपने विचारोंको प्रकट कर सकूँ । जो कुछ हो सका टूटी फूटी भाषामें आपके सामने उपस्थित करता हूँ । वीर पुरुषोंके चरित पढ़नेसे हृदयमें वीरताका संचार होता है, इसी लिये विचित्र-घटना-पूर्ण यह क्षुद्र जीवनी लिखी गई है । यद्यपि चरित-नायककी चरितहीनता-सम्बन्धी कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिनका उल्लेख कुछ पाठकोंको अनुचित प्रतीत होगा; लेकिन मैंने इन घटनाओंको छोड़ना ठीक नहीं समझा । इसके कई कारण हैं। **पहला कारण** तो यह है किसी मनुष्यके जीवनका ठीक ठीक चित्र हम तभी खींच सकते हैं, जब हम उसके गुणोंके साथ उसके दोषोंका भी यथोचित वर्णन करें । **दूसरा कारण** यह है कि हम अपने चरित-नायकोंकी भूलोंसे भी बहुत कुछ शिक्षा ले सकते हैं। रही दोषोंकी बात, सो निर्दोष तो केवल परमात्मा ही है । **तीसरा कारण** यह है कि मूल अँगरेजी पुस्तक तथा उसके बँगला अनुवादमें भी ये बातें ज्योंकी त्यों लिखी हुई हैं। इन्हीं कारणोंसे मैंने उपर्युक्त घटनाओंको छोड़ना अनुचित समझा।

यदि मेरे नवयुवक देशबन्धुओंका इससे कुछ भी मनोरंजन हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। विज्ञेषु किमधिकम् ।

मैहर राज्य, बुन्देलखंड।
सम्वत् १९७५।

विनीत,
ब्रजेन्द्रसिंह ।

प्रस्तावना ।

पाठक महानुभाव,

जिनके स्मरणार्थ यह क्षुद्र पुस्तक लिखी गई है, और जिन्होंने इसे लिखा है वे दोनों महाशय आज इस संसारमें नहीं हैं । दोनोंका स्वर्गवास हुए अभी एक वर्ष भी व्यतीत नहीं हुआ । दोनोंसे ही मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था । स्वर्गीय पं० सत्यनारायण कविरत्नजीकी मेरे ऊपर विशेष कृपा थी और स्वर्गीय कुमार ब्रजेन्द्रसिंह मेरे एक प्रिय शिष्य थे । वास्तवमें यह बात बड़े दुर्भाग्यकी है कि शिष्यकी मृत्युके बाद उसकी पुस्तककी प्रस्तावना उसीके शिक्षकको लिखनी पड़े। क्या ही अच्छा होता यदि यह पुस्तक 'ब्रजेन्द्र' के जीवनमें ही छप जाती। पर परमात्माको यह स्वीकृत नहीं था । लगभग ६ महीने हुए १७ वर्षकी अवस्थामें ब्रजेन्द्रका देहान्त हो गया। इसी लिये आज मुझे यह कष्टदायक कर्तव्य-पालन करना पड़ा है।

वैसे साधारणतः शिक्षकको अपने शिष्यके विषयमें प्रशंसात्मक बातें न कहनी चाहिये, पर यहाँ तो शिष्य संसारसे सदाके लिये कूच कर गया है, इसलिये विवश होकर उसके विषयमें दो चार बातें मुझे कहनी पड़ती हैं ।

ब्रजेन्द्रसिंह बुन्देलखण्डके मैहर नामक नगरके निवासी थे । मैहर राज्यके वर्तमान राजा साहब श्रीमान् ब्रजनाथसिंहके वे भाई लगते थे । इन्दौरके राज-कुमार विद्यालय (डेली कालेज) में उन्होंने मिडिल तक शिक्षा पाई थी । जिस समय उनकी मृत्यु हुई वे एण्ट्रेन्स क्लासमें आगये थे । जब यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय वे चतुर्थ कक्षामें पढ़ते थे । वार्षिक परीक्षामें अच्छे नम्बर पानेसे उन्हें 'डबल प्रोमोशन' मिल गया था और वे द्वितीय कक्षामें चढ़ा दिये गये थे । उन्हें कई वर्ष तक हिन्दी पढ़ानेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था, और मैं यह बात दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि कालेजभरमें हिन्दी-प्रेममें उनकी बराबरी कोई छात्र नहीं कर सकता था । बीसियों ऐसे विद्यार्थी हमने देखे हैं जो बढ़-बढ़कर बातें मारा करते हैं कि हम हिन्दीकी यह सेवा करेंगे, वह सेवा करेंगे, लेकिन ऐसे विद्यार्थियोंकी संख्या अत्यल्प ही होती है जो कुछ कष्ट उठा-

कर हिन्दी माताकी कुछ यथार्थ सेवा करनेके लिये उद्यत हों । ब्रजेन्द्रके हृदयमें मातृभाषा हिन्दीके प्रति असीम श्रद्धा थी और मातृभूमि भारतके प्रति भी उनके हृदयमें प्रेमाङ्कुर अच्छी तरह जम चुका था । आज कलके राजा महाराजाओंसे अथवा उनके भाई-बन्धुओंसे यह आशा करना कि वे आगे चलकर हिन्दीकी कुछ सेवा करेंगे व्यर्थ ही है। लेकिन इस पुस्तकके लेखक कुमार ब्रजेन्द्रसिंह इस नियमके अपवाद थे। यह पुस्तक ही हमारे कथनका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

ब्रजेन्द्र बड़े हँसमुख थे, और हास्यप्रिय भी थे । उनके सहपाठियोंके मनोरंजनार्थ उनके स्वभावकी दो चार बातें यदि मैं यहाँ लिख दूँ तो आशा है कि अन्य पाठकगण मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

एक बार छुट्टियोंके दिनोंमें जब मैं घरपर था, मेरे पास एक लिफाफा पहुँचा। खोलकर पढ़ने लगा तो उसमें देखा "महाराजजी, आशीर्वाद ।" मैं सोचने लगा कि आशीर्वाद देनेवाले ये कौन वृद्ध महाशय हैं ? नीचे नाम देखा तो लिखा था "भवदीय शिक्षक, ब्रजेन्द्र !"

एक दिन उर्दू-मास्टर गैरहाजिर थे । मर्दनसिंह नामक एक विद्यार्थी जो उर्दू पढ़ता था उर्दू-क्लासमें ही बैठा हुआ था । मैंने ब्रजेन्द्रको आज्ञा दी-"जाओ मर्दनसिंहको बुला लाओ, आज वे हिन्दी क्लासमें ही बैठेंगे।" ब्रजेन्द्र गये और वहीं जमकर बैठ गये। मैंने एक दूसरा लड़का भेजा, वह भी वापिस नहीं लौटा। तीसरा छात्र भेजा गया, वह भी लापता हुआ । चौथा छात्र भी वहीं अटक गया। अन्तमें मेरे क्लासमें केवल एक विद्यार्थी रह गया। मैंने उससे बड़ी डाँटडपटके साथ कहा-"देखोजी, यह मामला क्या है? तुम जल्दी जाकर सब लड़कोंको बुला लाओ। अगर तुम भी वहीं रह गये तो समझ लेना एक सप्ताहभरका नौट (शून्य) नम्बर दे दूँगा।" थोड़ी देरमें ब्रजेन्द्र मुस्कराते हुए सब लड़कोंके साथ चले आये। पूँछनेपर मालूम हुआ कि आप वहाँपर मौलवी साहब बने कुर्सीपर विराजमान थे और लड़कोंको उर्दू पढ़ानेका ढोंग कर रहे थे ! बहुत कुछ भला बुरा कहकर मैंने उन्हें क्षमा कर दिया। कठोर शासन-नियमोंके पक्षपातियोंको यह बात 'डिसीप्लिन' के विरुद्ध भले ही जँचे, पर मेरी तुच्छ सम्मतिमें तो यह क्षन्तव्य ही थी।

ब्रजेन्द्र मुहर्रमी लड़कोंकी तरह चुपचाप मुँह लटकाये हुए नहीं बैठे रहते थे। क्लासमें हँसना और दूसरोंको हँसाना उनका रोजका काम था। लेकिन साथ ही साथ उनमें यह गुण भी था कि वे पाठके समय पूर्ण गम्भीरता धारण कर सकते थे। उनके छात्रालयके साथी विद्यार्थी अब भी उनके हास्यप्रिय स्वभावकी बहुत याद करते हैं।

मातृभूमि, देशभक्ति, मातृभाषा इत्यादि विषयोंपर कुछ न कुछ लिखने और पढ़नेकी इच्छा वे बराबर किया करते थे। जब कभी मैं क्लासमें पूँछता—"अच्छा भाई, बतलाओ किस विषयपर निबन्ध लिखना चाहते हो?" कोई विद्यार्थी कहता—'वसन्त ऋतु' कोई कहता—'ब्रह्मचर्य्य' पर ब्रजेन्द्रके विषय 'महाराणा प्रतापकी जीवनी' 'देशभक्ति' इत्यादि जैसे ही हुआ करते थे।

जब वे विद्यालय छोड़कर घर जानेवाले थे मेरे पास आये, और उन्होंने मातृभूमिका एक चित्र मुझे दिया। यह सुन्दर चित्र इस समय भी मेरे पास है। इस चित्रके नीचे श्रीयुत लाला भगवानदीनजीकी एक अत्युत्तम कविता लिखी हुई है, जिसका प्रारम्भ इस प्रकार है;—

हे जन्मभूमि जननी, मैं तुझको आदरूँगा।
निज बाहुबलसे तेरे संकट सभी हरूँगा॥ १॥
निज बुद्धि-वाक्य-बलसे साहित्य-घर भरूँगा।
सम्पत्ति सारी अपनी चरणों पै ले धरूँगा॥ २॥
तन मन वचनसे धनसे सेवा तेरी करूँगा।
तेरे लिये जिऊँगा, तेरे लिये मरूँगा॥ ३॥

निस्सन्देह 'ब्रजेन्द्र' का हृदय इसी प्रकारके भावोंसे परिपूर्ण था। उनकी निबन्ध लिखनेकी योग्यता दिन दिन बढ़ रही थी, और मैं कह सकता हूँ कि उनके कोई कोई निबन्ध तो एण्ट्रेन्स क्लासके हिन्दी निबन्धोंसे उत्तमतर होते थे। कर्नल सुरेश विश्वासकी जीवनी उन्होंने चतुर्थ कक्षा—मिडिलसे भी एक नीचे दर्जे—में लिखी थी। वे अँगरेजीसे हिन्दी अनुवाद अच्छी तरह करने लगे थे। यद्यपि प्रारम्भमें उन्होंने बड़ी ऊँटपटाँग भूलें की थीं लेकिन अब वे वैसी गलतियाँ न करते थे, और उनकी भाषा भी धीरे धीरे सुधरने लगी थी। एक बार उन्होंने बड़ी मजेदार गलती की थी। प्रसिद्ध समाज-सुधारक बेहरामजी

एम. मलाबारीकी जीवनीमें उन्होंने लिखा था—" मलाबारी ऐसे नटखट थे कि वे इतनी छोटी उम्रमें ही दियासलाइयाँ तोड़ा करते थे। " जब यह जीवनी मेरे पास शुद्ध होनेके लिये आई तो उपर्युक्त वाक्य पढ़कर मुझे आश्चर्य्य हुआ। अँगरेजी पुस्तक खोलकर देखी तो मालूम हुआ कि वहाँ पर उन्होंने match का अर्थ 'जोड़ी' करनेके बजाय 'दियासलाई' किया है। असलमें बात यह थी कि मलाबारीजी इधरकी उधर भिड़ाकर लगी लगाई सगाइयोंको तुड़वा डालते थे!

मुझसे वे प्रायः पूँछा करते थे—" मेरा निबन्ध किसी मासिकपत्रमें छपने योग्य कब हो जावेगा? " यद्यपि मैं जानता था कि ब्रजेन्द्रके अनुवादित निबन्ध 'विद्यार्थी' इत्यादि पत्रोंमें बड़ी आसानीके साथ छप सकते थे, लेकिन मैं बराबर यही उत्तर देता था—" ठहरो, अभी जल्दी क्या है? अगर तुम छपाना चाहो तो चाहे जब छपवा देंगे। " इसी आशासे कि कभी न कभी उनके निबन्ध मासिक पत्रोंमें छपने योग्य होंगे, वे बराबर लिखा करते थे। कालेजके जीवनके विषयमें एक गल्प, तथा मलाबारीकी संक्षिप्त जीवनी उन्होंने इसी आशयसे लिखकर मुझे दी थीं। अपने प्रथम लेखको किसी पत्रमें प्रकाशित होते देखकर जो प्रसन्नता होती है, उसे लेखक ही भली प्रकार अनुभव कर सकते हैं। ब्रजेन्द्रकी हार्दिक अभिलाषा यही रही कि उनका लेख किसी मासिकपत्रमें छपे। उनकी यह अभिलाषा कभी की पूर्ण हो गई होती, पर मेरे आलस्यके कारण ऐसा न हो सका। जब कभी वे पूँछते—" आपने मलाबारीवाला लेख शुद्ध कर दिया? " मैं बराबर यही कहता था—"माफ कीजिये; अभी नहीं, आज कल मैं बहुत बिजी (busy) हूँ। " ब्रजेन्द्रकी इच्छा उनके हृदयमें ही रही। मैं बराबर busy बना रहा और वे इस संसारसे कूच भी कर गये! अहा! क्या ही अच्छा होता यदि आज मैं उनसे कह सकता—" ब्रजेन्द्र, मैंने तुम्हारी कर्नल सुरेश विश्वासकी जीवनी शुद्ध कर दी है, अब तुम इसे प्रकाशित कर सकते हो। "

उपवनकी कितनी ही कलियाँ बिना खिले ही झड़ जाती हैं। ब्रजेन्द्रकी हृदय-कलिका भी अपने प्रथम प्रयत्नको प्रकाशित देखकर प्रफुल्लित होनेका अवसर न पा सकी!

लीजिये पाठक, एक नवयुवकका प्रथम और अन्तिम (!) प्रयत्न आपके सामने उपस्थित है।

—**बनारसीदास चतुर्वेदी,**

हिन्दी शिक्षक, डेली कालेज, इन्दौर।

कर्नल सुरेश विश्वास।

१–नदिया और वहाँके निवासी।

शायद ही बंगाल प्रान्तमें नादियाके समान और कोई परगना विख्यात हो। इसका प्राचीन नाम नवद्वीप था। सेन घरानेके राजाओंके समयसे ही इसमें विद्वान और गुणवान् होते आये हैं। इसकी कीर्तिकी ध्वजा उन दिनों चारों ओर फहरा रही थी। यह परगना अभी तक अपनी मर्यादाको उसी प्रकार अचल किये है। यहाँ पर संस्कृतका प्रचार, बनारस तथा विक्रमपुरके समान ही, चला आता है। यही नहीं, नवद्वीप महात्मा गौराङ्गकी जन्मभूमि है।

महात्मा गौरांग मनुष्य नहीं, वरन् देवता थे। उनका ध्यान सदैव जातिकी उन्नतिकी ओर ही लगा रहता था। कोई भी हिन्दू ऐसा न होगा जो उनकी उच्चता, उदारता और धार्मिक प्रवृत्तिकी बड़ाई न करे। यह बात तो सबको माननी ही पड़ेगी कि अधर्म-सागरमें डूबती हुई धर्मकी नावको उन्हींने पार लगाया था, और अधर्मका नाश करनेवाले यही महात्मा थे। वह ऐसा भयंकर समय था कि लोगोंने ईश्वरमें विश्वास करना ही छोड़ दिया था; और मुसलमानोंने हिन्दुओंको मार मार कर

मुसलमान बनाना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझकर चारों ओर मार-काट मचा रक्खी थी। यदि हम महात्मा गौराङ्गको देवरूप न भी मानें तो भी इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उन्हें एक तेजस्वी व्यक्ति मानना ही पड़ेगा। यदि ये महात्मा उस समयमें हमारे धर्मका उद्धार न करते तो निस्सन्देह अभी तक उसके चिह्न मिलना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव हो जाता। तभीसे नवद्वीप एक बड़ा तीर्थस्थान माना जाता है। आजकल उसका नाम बदल कर 'नदिया' हो गया है। बंगाल प्रान्तभरमें अभी तक इसकी श्रेष्ठता प्रसिद्ध है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि वहाँ वस्ती अधिक है, परन्तु यह उन प्रसिद्ध पुरुषोंकी जन्मभूमि भी है, जिन्होंने स्वदेश तथा अपने गौरवको स्थिर रखनेके लिये जीवनको तृणके समान दे दिया था। इसकी स्थिति भी प्रान्तके मध्यभागमें होनेके कारण बहुत लाभदायक है। वहाँ नीलकी उपज इतनी होती है कि विदेशियोंकी दृष्टि पहले वहीं पड़ी थी। जिस उपद्रवने अँगरेजोंकी कीर्ति-कौमुदीमें धब्बा लगा दिया था, और जिसके कारण बंगालके कुछ जिलोंके निवासी गुलामोंके समान होगये थे, उस उपद्रवका मूलस्थान यही परगना है। उसमें विश्वास नामक घरानेके भी आदमी रहते थे। यद्यपि यह घराना मध्यम श्रेणीके पुरुषोंका था, और इस घरानेके आदमी न तो प्रसिद्ध ही थे, और न इनके पास धन ही था, तथापि अपने दीन पड़ोसियोंकी रक्षाके हेतु उन्होंने सर्वस्व त्याग कर तुरन्त गोरे प्लाण्टरोंसे युद्ध करना आरम्भ कर दिया था। बार बार उन वीरों तथा सच्चे देशभक्तों पर घोर आक्रमण होते थे, और शत्रुओंके समान मनुष्य तथा शस्त्र न होनेके कारण वारंवार उनका सत्यानाश होता था। दुष्ट शत्रुओंने उनके घरोंकी लूट मचा दी थी और उनकी स्त्रियों पर अत्याचार किये थे। परन्तु धन्य है उन वीरशिरोमणि विश्वास घरानेके लोगोंको, जिन्होंने जीवनपर्य्यन्त युद्ध बन्द न किया, और

बराबर धैर्य्यपूर्वक लड़ते रहे । यह कुछ कम गौरवकी बात न थी कि उन्होंने परोपकार और धर्मके लिये ऐसी आश्चर्य्यजनक बातें कर दिखाई । अन्तमें उनके प्रयत्नसे उस परगनेमें नीलवालोंके अत्याचार बन्द हो गये ।

इसमें सन्देह नहीं कि मलेरियाने वहाँके निवासियोंका नाश कर दिया है । तथापि शान्तिपुर और किसनगंजके ग्वाला जातिके लोग लाठी चलानेमें अब भी बहुत प्रसिद्ध हैं । इसका परिचय भी उन्होंने कई बार दिया है । वहाँके 'वोद्दे' और 'विशे' नामक डाकुओंके किस्से अब भी मशहूर हैं । नदियाके योद्धाओंमेंसे रामदास बाबूका नाम भी बहुत प्रसिद्ध है । इनके शारीरिक बलका कुछ ठिकाना न था । अपने समयके ये भीम ही थे । नदिया तथा वहाँके निवासी इस प्रकार सर्वगुण-सम्पन्न रहे हैं ।

२—नाथपुरका विश्वास वंश ।

नाथपुर नदिया परगनेका एक छोटासा गाँव है । यह इच्छामती नदी पर बसा हुआ है, और किशनगंजसे केवल १४ मीलकी दूरी पर है । पुराने समयमें यह नदियाके महाराजोंकी राजधानी था, और अब भी परगनेका एक मुख्य स्थान है । यह कोई बड़ा और प्रसिद्ध गाँव नहीं है, तथापि नाथपुरके कुलीन विश्वास घरानेके आदमी यहाँ पर सदैवसे रहते आये हैं, और अपना गौरव पहलेहीकी भाँति स्थिर रखते आये हैं । उन लोगोंको अपने कुलीन, तथा सबका नेता, होनेका लेशमात्र भी गर्व नहीं है, और वे भूलकर भी अपनी शक्तियोंको आडम्बरी रूपसे नहीं दिखलाना चाहते । इतना होने पर भी उनका नाम चारों ओर प्रसिद्ध है । वे बड़े ही शीलवान्, उदार, दानी तथा धार्मिक सज्जन हैं । उनका यश बालूकी भीतके समान अल्पकालस्थायी नहीं, बल्कि हिमालयके समान अचल और विस्तृत है ।

इसी पुराने और कुलीन वंशमें सुरेशचन्द्रका जन्म सन् १८६१ में हुआ था। इनके पिता उन दिनों सरकारी कचहरीमें नौकर थे। वे वैष्णव थे। उनका नाम गिरीशचन्द्र था। वे घर पर अधिक दिन तक नहीं ठहर सकते थे। जब वे कहीं जाते तो उन दिनोंकी प्रथाके अनुसार अपने घरवालोंको वहीं छोड़ जाते थे। इससे यही प्रमाणित होता है कि उस समय बँगालकी प्रजाको किसी प्रकारके कष्ट न थे। उन दिनों किसीकी इच्छा राजधानी या शहरोंमें रहनेकी न होती थी। अधिकतर मध्यम श्रेणीके मनुष्य गाँवमें रहते, और किसानोंकी तरह जीवन व्यतीत करना पसन्द करते थे। इसका कारण यह भी था कि अगर कोई शहरोंमें जाकर रहता भी, तो वहाँकी समाजके बनाये हुए नियमोंके मारे उसकी नाकों दम आ जाती थी। इस लिये जो ग्रामनिवासी नगरोंमें नौकरी करने जाते थे वे प्रायः अपने घरवालोंको साथ नहीं ले जाते थे। इस भाँति वे अपने घरानेकी सादगीको न खोकर, वहाँ अकेले जाकर परदेशियोंके समान ही रहते थे। सालमें दो एक बार घर पर आ जाते, और घरवालों तथा पड़ोसियोंको आनन्द देते थे। उस समय नगरोंसे लौटे हुए व्यक्तियोंको, तथा उनके घरवालोंको, कितना हर्ष न होता होगा और उनके दिन कितने जल्दी और आनन्दसे न कटते होंगे।

३—जन्म तथा बाल्यावस्था ।

सरकारी कचहरीमें नौकर होनेके कारण गिरीशचन्द्र अधिकतर घरमें न रहने पाते थे। उनके दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ थीं। सुरेशचन्द्र उनके जेठे पुत्र थे। जैसा कि हम लिख चुके हैं, उनका जन्म सन १८६१ ई० में हुआ था। बाल्यावस्थाके लक्षण अन्त तक रहते हैं। बाल्यावस्थासे ही सुरेश डरना तो जानते ही न थे। परन्तु उनकी निडरता अन्य बालकोंसे कुछ भिन्न थी। यद्यपि वे जानते थे कि

आग जला देती है, तो भी निडरतासे अपनी उँगली उसमें डाल देते थे। उनकी गुस्साका कुछ ठिकाना न था। जब उनके मनकी कोई बात न हो पाती थी, तो उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो जाते, और जब तक वह काम न हो जाता उनको चैन न पड़ती थी। परन्तु कृपापूर्ण बर्ताव और मीठे वचनोंसे उनकी हार अवश्य ही हो जाती थी। जिस कामको वे छड़ीके डरसे कदापि न करते उसे वे दो चार मीठी बातें कहनेसे झट कर देते थे। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि सुरेश मृदुवचनोंके दास थे। बहुतसे कार्य, जो उनकी अवस्थाके बालकोंको कठिन ही नहीं बल्कि असंभव मालूम होते, सुरेश उन्हें सरलतासे शीघ्र ही कर देते थे। वे ऐसे खेल कूद किया करते थे जिनसे प्रतिदिन कहीं न कहीं उनके चोट अवश्य ही लगा करती थी। परन्तु वह इसकी कुछ पर्वाह न करते थे। बहुत ऊँचेसे कूदना, बहुत दूर तक दौड़ जाना, वृक्ष तथा भीतों पर बार बार चढ़ते रहना—ये उनकी प्रतिदिनकी साधारण घटनाएँ थीं। अनेक व्यक्तियोंका जन्म शासन ही करनेके लिये होता है, बस एतदर्थ ही सुरेश वीरका जन्म हुआ था। इनकी वीरता और चंचलता-ने बालकों पर इतना प्रभाव डाल दिया था कि सब बालक स्वयं आकर उनको प्रणाम करते थे, और उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा किया करते थे। इससे यही विदित होता है कि सुरेशमें बाल्यावस्थासे ही नेता बननेके गुण विद्यमान थे।

४—बाल्यावस्थाकी बातें।

कठिनाइयोंको सहन करनेमें सुरेश सबसे बढ़कर थे। यह तो सब जानते ही हैं कि बच्चोंका प्रेम आगसे बहुत होता है। ऐसा शायद ही कोई बालक हो, जिसने एक या दो बार अपनी उँगली न जलाई हो। जब कि सुरेश लगभग एक वर्षके थे, उनका आगसे इतना प्रेम था,

कि माताके रोकने पर भी न रुकते और अपना हाथ जला लेते थे। एक दिन संध्याको, जब कि उनकी माताको घरके काम काज करने थे, सुरेशने रोना आरंभ कर दिया। यहाँ तक कि उनकी माताने उनको पलंग पर अकेले छोड़कर घरका काम-काज करना ठीक न समझा।

कमरेमें बिना चिमनीका एक मामूली दीपक जल रहा था। वह ऐसे स्थानमें रक्खा था कि कोई भी बालक उसे सरलतासे पकड़ सकता था। इन सब बातोंको सोचकर उनकी माताने उन्हें अकेले छोड़कर न जाना हीं निश्चित किया था। उन्हें डर था कि सुरेश कहीं अपना हाथ न जला डाले। माताने उनका कोमल हाथ पकड़ा और दीपकके पास कर दिया। माँने यही सोचा था कि जब उसको अचानक आँच लगेगी और दर्द मालूम होगा तो वह रोकर हाथ खींचने लगेगा, और फिर आगसे डरने लगेगा। लेकिन सुरेशने ऐसा न किया। न तो वे रोये और न उन्होंने एक भी आँसू गिराया। सुरेश उस समय ऐसे कठोर बन गये कि उनके मुखसे कोई यह नहीं पहचान सकता था कि उनके हाथको दुःख पहुँच रहा है। उनकी यह दशा देखकर माँको बड़ा आश्चर्य हुआ, और उन्होंने इस दिनसे सुरेशको दंड देना छोड़ दिया।

दो वर्षकी अवस्थामें सुरेशने एक ऐसी कठिन तथा आश्चर्यजनक बात कर दिखाई, जो उनसे दूनी उम्रवाले बालकोंके लिये भी अत्यन्त कठिन थी। उस घटनासे सुरेशकी निडरता और चंचलता गाँव भरमें प्रसिद्ध हो गई। एक दिन जब कि सब घरवाले अपने अपने कामोंमें लगे थे, सुरेश गिरते पड़ते छोटे छोटे सुहावने डगोंसे एक बाँसकी नसैनीकी ओर गये। यह नसैनी भींतके सहारे रक्खी थी। सुरेशने उस पर चढ़ना शुरू किया, और वे चढ़ते चढ़ते बीस फुटकी ऊँचाई तक पहुँच गये। वहाँ पर बहुत प्रसन्न होकर तालियाँ बजाने लगे, और नीचे देख देख कर अपनी शक्तिके अनुसार कलोल करने लगे। उनके शब्दोंको सुनकर माता तथा

अन्य कुटुम्बी जन वहाँ पहुँचे । उनकी ऐसी दशा देखकर सबके रोंगटे खड़े होगये । थोड़ीसी बेखबरी और हिलने-डुलनेसे सुरेश नीचे आपड़ते । फिर क्या यह सम्भव था कि २० फीटकी ऊँचाई परसे गिरने पर इतने छोटे बालककी हड्डियाँ भी बच जातीं ? माता और कुटुम्बियोंको देखकर सुरेशने और जोरसे तालियाँ बजाना और किलकारी मारना शुरू किया । इससे घरवाले बहुत ही डरे । किसी औरको नसैनी पर चढ़ाना भी ठीक न था । उनकी माता जितना उनको चुपचाप बैठनेको कहती थीं, उतना ही वे अधिक मटकते और हल्ला मचाते थे । थोड़ी देरके बाद थक कर और माताका कहना मानकर वे चुप बैठ रहे । फिर कई मनुष्योंने खूब जोरसे नसैनीको पकड़ रक्खा, और एक आदमी ऊपर चढ़कर उन्हें उतार लाया । उनको नीचे आया देख उनकी माताको जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन नहीं हो सकता । पाठकगण स्वयं उसका अनुमान कर सकते हैं । माताको यह पूरा पूरा डर था कि इन ऊटपटाँग खेलोंके कारण सुरेशका युवावस्था तक पहुँचना ही अत्यन्त कठिन होगा ।

५—बिल्लीसे मुठभेड़ ।

सुरेशके साहसकर्मकी एक घटना बहुत प्रसिद्ध है । गाँवकी बिल्लियाँ बहुधा कस्बों तथा शहरोंकी बिल्लियोंसे कहीं अधिक डरावनी होती हैं । वे केवल मूसोंके लिये ही भयानक नहीं बल्कि चिड़ियों, खरहों तथा गिलहरियोंके लिये भी उसी प्रकार भयानक होती हैं । जो लोग गाँवोंमें रहते हैं उन्होंने अक्सर देखा होगा कि गाँवोंकी बिल्लियाँ छोटे मोटे कुत्तोंको तो कुछ गिनती ही नहीं । मामूली कुत्ते तो उनके सामने दुम दबा कर भाग जाते हैं । एक बार हमारे सुरेशकी भी एक बिल्लीसे अच्छी लड़ाई हुई । एक दिन एक बड़ी मोटी ताजी बिल्ली बेलके वृक्ष पर चढ़ गई और वहाँसे गिलहरी पकड़ लाई । गिलहरीकी

गरदनसे खून निकल रहा था, लेकिन उसमें थोड़ी बहुत जान बाकी थी। बिल्ली उसे पृथ्वी पर रख कर उससे थोड़ी दूरी पर बैठ गई, और उसी ओर बराबर ताकने लगी। वह बार बार अपनी पूँछको इधर उधर जमीन पर पटकती थी, और जब वह अधमरी गिलहरी उठनेकी कोशिश करती,उसी समय उसके ऊपर पंजा रख देती थी। जिस समय वह बिल्ली अपने भोजनका यह प्रबन्ध कर रही थी, सुरेशजी वहाँ जा पहुँचे। उनकी उम्र उस समय केवल तीन ही वर्षकी थी। गिलहरीके देखते ही उनकी इच्छा उसको उठा लेनेकी हुई। यह बिना सोचे ही कि कहीं बिल्ली मुझपर आक्रमण न करे, वे आगे बढ़ने लगे। उनको आगे बढ़ते देख बिल्लीने तेजीसे गुर्राना शुरू किया, परन्तु सुरेशने निर्भय होकर गिलहरी-को उठा लिया। ज्यों ही वे उसे उठाकर चलने लगे त्यों ही बिल्लीने बड़ी भयंकरताके साथ उनपर हमला किया। उसे आता देखकर और उसके पंजोंकी चोटके डरसे वे रोकर भाग न गये, बल्कि उन्होंने उस बिल्लीका स्वागत लातों तथा मुक्कोंसे ही किया। लगभग आध घंटे तक उनका युद्ध होता रहा। अन्तमें एक आदमी वहाँ आ निकला, उसने इनको खूनसे भरा हुआ देखकर उठा लिया, और बिल्लीको भगा दिया। सुरेशको इतनी चोट पहुँची थी कि वे एक महीने तक पलंग परसे न उठ सके। जिस व्यक्तिकी बाल्यावस्थामें ही ऐसी आश्चर्य्यजनक तथा वीरतापूर्ण घटनाएँ हुई हों, उस पुरुषका आगे चलकर फौजका मुखिया बनना, और तोपोंके सामने आक्रमण करना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं।

६—लड़कपनके रंग-ढंग।

ज्यों ज्यों सुरेश बड़े होते गये त्यों त्यों उनकी वीरता भी बढ़ती गई। लड़ाई और वीरताओंकी कहानियाँ वे बड़े ध्यानपूर्वक सुना करते थे। वे पढ़ते लिखते बिल्कुल न थे, लेकिन उन्हें महाभारत और रामायणकी बातें खूब याद थीं। वे सदैव वीर अर्जुन और श्रीराम-

चन्द्रजीकी प्रशंसा सुननेमें मग्न रहते थे। वे केवल भारतके ही वीर पुरुषों और उनके कार्य्योंको न जानते थे, बल्कि सिकन्दर, लियोनिडास हैनीबल, अलफ्रेड, इत्यादिकी कथाओंसे भी परिचित थे। ब्रस, वालेस, नैपोलियन तथा वाशिंगटनकी भी वीरताओंकी कहानियाँ उन्हें मालूम थीं। ये कहानियाँ उन्होंने कृष्णनगर कालेजके विद्यार्थियोंसे सुनी थीं। उन दिनों बंगालमें केवल तीन ही कालेज थे—'हिन्दूकालेज' 'हुगली कालेज' और 'कृष्णनगर कालेज'। छुट्टीमें आये हुए विद्यार्थियोंके साथ सुरेश बहुत रहा करते थे और उनसे अन्यान्य वीरोंकी कथायें सुना करते थे। वे लड़कोंको जोड़कर एक प्रकारकी फौजसी बनाते, और स्वयं उसके अफसर बनते थे। अपनी फौजके साथ वे इच्छामती नदीके किनारे बड़ी धूमधामसे घूमा करते थे, और बड़ी चतुरतासे उन लड़कोंको अपने वशमें रखते थे। जब थक जाते तो तुरंत शतरंज लेकर आप ही आप खेलते थे, और स्वयं ही 'मात' निश्चय कर लेते थे। यद्यपि ये बातें बहुत मामूली और छोटी मालूम पड़ती हैं तथापि ये ध्यान देने योग्य है, क्योंकि इन्हींसे सुरेश विश्वासकी शक्तियोंका क्रमागत विकाश प्रकट हो सकता है। वे प्रायः शतरंज खेलते थे। शतरंजकी उत्पत्ति रावणके समयसे समझी जाती है। दशानन अपने समयमें सर्वशक्तिमान गिना जाता था। देवताओंने भी उसको महावीर पुरुष माना था। रावणको लड़ाई करनेसे तथा हजारों मनुष्योंको मारकर सहस्रों स्त्रियों और बालकोंको अनाथ करनेसे, रोकनेके लिये उसकी रानी मन्दोदरीने शतरंजका खेल निकाला था, जिसमें कि लड़ाईकी मारकाटके बिना ही लड़ाईके समान ही आनन्द आवे। अभी तक यह कथा प्रसिद्ध है। यह न समझना चाहिये कि सुरेश ६ या ७ ही वर्षकी अवस्थामें शतरंजके खिलाड़ी हो गये थे, मतलब कहनेका यह है कि वे इस प्रकारके खेलोंसे अपना दिल बहलाया करते थे। उनकी तेजी इत्यादिको देखकर सब लोग

उन्हें बहुत चालाक समझने लगे थे, और नाथपुरके निवासियोंको यह पूरा भरोसा था कि सुरेशका चालचलन युवावस्थामें बिगड़ जायगा।

उनकी माताको छोड़कर और सबका यही विश्वास था। उन्हीं दिनों बाबू गिरीशचन्द्र विश्वासने कोरिया–कलकत्तामें एक मकान मोल लिया और कुटुम्ब-समेत वहाँ चले गये। उन्होंने सुरेशको एक पाठशालामें भर्ती करा दिया। सुरेशका ध्यान अधिकतर जिमनेस्टिक इत्यादि खेल कूदोंमें बहुत लगता था। उन्होंने पढ़नेकी ओर बिल्कुल ख्याल नहीं किया। वहाँ पर भी उन्होंने अपने एक भाईकी सहायतासे बालकोंका एक दल तैयार किया और वे लड़ाइयोंका स्वाँग करने लगे। वे अपने संगियोंको खेतोंमें ले जाते, और दो पंक्तियोंमें अलग अलग खड़ा कर देते। पेड़को ही किला बनाकर उस पर ही आक्रमण करते और एक दूसरे पर मिट्टीकी गोलियाँ फेंकते थे।

७–बाल बाल बचे।

जब सुरेश ११ ही वर्षके थे, उनको अकेले कलकत्तासे नाथपुरकी यात्रा करनी पड़ी। इनकी शैतानियाँ अभी कुछ भी कम न हुई थीं। ये कभी घर पर न रहते, सदैव इधर उधर खेला कूदा और उत्पात मचाया करते थे। जब वे नाथपुर जा रहे थे, उन्हें मार्गमें एक बड़ा भारी आमका वृक्ष मिला। उन्होंने उस पर एक घोंसला देखकर तुरन्त उसके लेनेके लिये चढ़ना आरम्भ कर दिया। घोंसलेके पास पहुँचे ही थे कि पीछेसे किसी जानवरके फुसकारनेकी आवाज आई। उन्होंने पीछे फिर कर देखा। जो भयंकर वस्तु उन्हें दीख पड़ी, उससे किसी बालकके तो क्या, बड़े बड़े आदमियोंतकके छक्के छूट जाते। उन्हें अपने नीचे एक बड़ा काला साँप दीख पड़ा। पर वे इससे डरे नहीं।

क्रोधसे भरा हुआ सर्प उनकी राह पर ही था, इस लिये उनका नीचे उतरना लगभग असंभव ही हो गया था। सुरेशने तुरंत सर्पकी ओरसे

मुँह फेर लिया और धीरे धीरे नीचे उतरनेका विचार किया, जिससे वे उस सर्पसे दूर होकर उतर जावें। ऐसा करने पर भी उस सर्पसे बचना अत्यन्त कठिन था। और न वे, एक साथ डाल परसे उछल कर, उस खोखलेके ऊपरसे, जिसमें वह सर्प था, कूद ही सकते थे, क्योंकि ऐसा करना बहुत मुश्किल था। अब न तो वे नीचे ही उतर सकते थे, क्योंकि जितने नीचे वे उतरते उतने ही वे साँपके पास आते जाते थे, और न ऊपरकी शाखा पर जा सकते थे, क्यों कि वह बिल्कुल पतली थी। इन सब बातोंपर ध्यान करके सुरेशने अन्तमें जीवन-युद्धके हेतु नीचे उतरना ही आरम्भ कर दिया। साँप भी अपनी शिकारको पास आता देख फन उठाकर तैयार हो गया। थोड़ी देर रुककर उसने सुरेश-की जंघापर काटनेकी इच्छासे फन मारा। दैवयोगसे फन उनकी जाँघमें न लगकर वृक्षकी शाखा पर पड़ा। वह साँप अपना फन वहाँसे उठाने-वाला ही था कि वीर सुरेशका बायाँ हाथ ठीक उसके फन पर जा पड़ा। उन्होंने उसके सरको खूब जोरसे मुट्ठीमें पकड़ लिया। प्रायः बंगाली बालक हरवक्त एक चाकू अपने पास रखते हैं। सुरेशकी भी जेबमें एक चाकू रक्खा था। उन्होंने तुरन्त उसे दाहिने हाथसे निकाल लिया और दाँतसे खोलकर वे भुजामें लपटे हुए सर्पको काटने लगे। चालीस पचास सेकंडमें उन्होंने साँपका सिर काट कर जमीन पर फेंक दिया। ऐसी भयंकर घटनाके बाद फिर ऊपर चढ़नेकी हिम्मत शायद ही कोई बालक करता। परन्तु सुरेश ठीक घोंसले तक जा पहुँचे और चिड़ियोंके बच्चोंको निकाल लाये। उतरते समय उन्होंने उस खोखलेमेंसे उस साँपको भी निकाल कर नीचे फेंक दिया। साँपकी लम्बाई ६ फीट और पेटकी चौड़ाई ६ इंच थी। उस साँपको और चिड़ियोंके बच्चोंको वे जयचिह्नके समान अपने पिताके पास ले गये। ऐसी घटनाओंसे उनके सब कुटुम्बियोंको प्रतीत हो गया था कि सुरेश अवश्य ही किसी न किसी दिन अपनी जान खोदेगा।

८–भयंकर युद्ध।

बंगालके गाँवोंको अभी तक पागल कुत्तों और गीदड़ोंसे बहुत कष्ट मिलता है। ये भयंकर पशु अकेले आदमियों तथा गाय-भैंसों पर ही आक्रमण नहीं करते, बलिक कभी कभी सारे गाँवके आदमियोंमें खलबली डाल देते हैं। जिन गाँवोंमें कहींसे पुरानी रक्खी रखाई छोटीसी बन्दूक निकल आती है, वहाँ इन भयंकर पशुओंका निवास बहुधा नहीं होता, परन्तु जहाँ पर हमारी कृपालु (?) गवर्नमेंण्टके नियमानुसार हथियार नहीं होते, उस गाँव पर इनके आक्रमण अत्यंन्त कठोर होते हैं। यहाँ तक कि सब मनुष्य मिल कर जीवनकी आशा त्याग कर इन कुत्तोंकी मरम्मत करनेका विचार करते हैं। एक समय जब सुरेश नाथपुरमें ही थे, वहाँ पर एक पागल कुत्ता गाँववालोंको बहुत दुःख दे रहा था। उस कुत्तेने कई आदमियों पर हमला किया था और कई पशुओंका जान ले ली थी। उन दिनों ऐसे पशुओंके काटे हुओंका इलाज केवल पेरिसमें ही हुआ करता था।

बेचारे गाँववाले अपनी देशी दवाइयाँ खा ईश्वर पर भरोसा रख घर पर ही बैठे रहते थे। एक दिन सुरेश टहलनेके लिये पगडंडी पर निकले। वे कुछ ही दूर चले होंगे कि उसी कट्टर कुत्तेने आघेरा। सुरेशके पास कोई हथियार या कोई और चीज भी न थी। इस लिये वे धूल उड़ाते हुए भागे। परन्तु वह विकरालमूर्ति, जीभ निकाले, आँखें लाल लाल किये हुए और भयंकर शब्द करता हुआ उनके पीछे ही हो लिया। अब क्या हो सकता था? अन्तमें सुरेशको एक युक्ति याद आगई। वे तुरन्त नालेके किनारे रुक गये। सुरेश मजबूत बूट पहने हुए थे, और ठोकर मारनेमें भी वे एक ही थे। ज्यों ही वह कुत्ता ठोकरकी मार पर आगया, त्यों ही उन्होंने जरा हट कर एक प्रेमकी ठोकर जमा दी। कुत्ता नालेमें जापड़ा। वह वहाँसे निकलनेकी कोशिश-

हीमें था कि सुरेशने सड़क परसे एक ईंट उठाकर उसके सिर पर ऐसे ओरसे दे मारी कि उसके लगते ही कुत्तेजी वहीं ठंडे हो गये। इस प्रकार ग्यारह वर्षके एक लड़केने नाथपुरका कष्टसे छुटकारा किया।

९-मृत्युसे उद्धार।

बहुधा अँगरेज लोगोंको शिकारसे बहुत प्रेम होता है। ऐसे विहारोंमें वे प्रायः सहस्रों रुपये व्यय कर देते हैं। इँग्लैण्ड इत्यादि देशोंमें जो लोग शिकार वगैरः के लिये जाते हैं वे अपने साथ बहुतसे कुत्तोंको भी ले जाते हैं। परन्तु भारतवर्षमें रहनेवाले अँगरेज जब किसी बड़े पशु जैसे शेर इत्यादिको मारने जाते हैं तो वे सदैव हाथीपर चढ़कर बहुतसे हाँकावालों और शिकारियोंको साथ लेजाते हैं। जब तक इन गोरे शिकारियोंको यह पूरा भरोसा नहीं हो जाता कि बड़े पशु नहीं मिलेंगे तब तक ये पैदल अथवा घोड़ोंपर नहीं जाते। लेकिन हिन्दुस्तानी शिकारी, जिनकी कि यही जीविका होती है, बिना किसी प्रकारका भय किये चल देते हैं। यद्यपि ये हिन्दुस्तानी शिकारी वहाँ जंगलमें बराबर भयंकर जीवोंसे घिरे रहते हैं, तथापि उनको इसकी लेशमात्र भी चिन्ता नहीं रहती। उन दिनों नदियामें नीलके कारखाने होनेके कारण वहाँ अँगरेज लोग बहुत रहते थे। वे सदैव घोड़ोंपर चढ़े हुए, और हाथमें बर्छी लिये हुए ही दिखाई देते थे। जब कि सुरेश नाथपुर-हीमें थे, तीन अँगरेज घोड़ोंपर सवार और कुत्तोंको साथ लिये हुए सुअ-रकी शिकारके लिये आ पहुँचे। कुछ शिकार न मिलनेपर वे लौट-नेकी इच्छा ही कर रहे थे कि उन्होंने एक बड़ा सुअर बाँसकी झाड़ीमें देखा। उसके निकालनेके लिये उन्होंने एक बन्दूक चलाई। आवाज सुनकर सुअर मैदानकी ओर भागा। उसको भागते देखकर शिकारियों और कुत्तोंने पीछा किया। जिस ओर वह भागा जा रहा था, उसी ओरसे सुरेश अपने साथियोंके संग चले आ रहे थे। उधर आते देख

शिकारियोंने उनको वापिस जानेके लिये बहुत इशारे किये, परन्तु सब निरर्थक हुए। सुअरने सुरेश और उनके साथियोंके ऊपर आक्रमण किया। सुरेश भयभीत होनेके बदले बहुत खुशी हुए। उन्होंने अपने साथियोंसे भाग जानेके लिये कहा, और वे खुद सुअरके सामने खड़े हो गये। भयानक सुअर उनकी तरफ बड़ी तेजीसे आ रहा था और उसके पीछे पीछे ही कुत्ते और शिकारी लगे हुए थे। सुअर अब सुरेशसे केवल बीस गजहीकी दूरीपर रह गया था। थोड़े ही समयमें वह बिल्कुल पास पहुँच गया। यहाँतक कि अब उसके मुँहसे निकलते हुए फेनके छींटे सुरेशके शरीरपर पड़ने लगे। उसकी दृष्टिसे यह विदित होता था कि वह सुरेशको मारे बिना न छोड़ेगा। ज्यों ही उसने दाँत मारनेके लिये सर नीचा किया, त्यों ही सुरेशके हाथकी लाठी ठीक उसके सिरपर पड़ी। उसके लगते ही सुअर जमीनपर गिर पड़ा। उसके उठनेके पहले ही पीछे लगे हुए कुत्तोंने उसकी गरदन आ दबाई। जब कि कुत्ते उसकी गरदन दबाये हुए थे, सुरेशके डंडे उसकी पीठपर पड़ रहे थे। थोड़ी देरमें सुअर मर गया। सुरेशकी वीरताको देखकर अँगरेजोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वे सुरेशकी बहुत तारीफ करने लगे। वे तीनों अँगरेज सुरेशको घेरकर खड़े होगये, और टूटी फूटी बँगलामें उस वीर बालकका नाम तथा ठिकाना पूँछने लगे। संध्या हो रही थी, और सुरेशकी आज्ञाके अनुसार उनके साथी भी चले गये थे। सुरेशने अपना नाम इत्यादि बता दिया। अँगरेज लोग उनकी अद्भुत बहादुरीको देखकर इतने मुग्ध हो गये थे कि उनमेंसे एकने उनका नाम और ठिकाना अपनी नोटबुकमें लिख लिया। अब बिल्कुल शाम होगई थी, और सुरेश अपने गाँवको लौटना चाहते थे, परन्तु साहबलोगोंने उनको अपने साथ फैक्टरी तक लेजानेकी इच्छासे रोक लिया। सुरेशने कहा "यदि मेरे माता पिता मुझे कहीं न पावेंगे तो वे अवश्य ही पागलसे हो जावेंगे।"

साहब—तुम इसका भय मत करो, हम तुम्हारे घरपर खबर भेज देंगे।

सुरेश—मुझे भूख भी बहुत लगी है, और तुम्हारे यहाँ खाकर मैं जातिसे बाहर नहीं होना चाहता।

साहब—क्या तुम सचमुच ही जातिकी इतनी पर्वाह करते हो ? अभी तो तुम जाति और उसके नियमोंको समझते भी न होगे !

सुरेश—मैं इसके विषयमें अधिक नहीं जानता, तो भी इतना कह सकता हूँ कि हिन्दूको म्लेच्छके हाथका छुआ भोजन कभी न करना चाहिये।

साहब—तो क्या तुम सदैव यहीं रहते हो ?

सुरेश—नहीं मैं बहुधा कलकत्तेमें रहता हूँ और भवानीपुरके लन्दन मिशनरी स्कूलमें पढ़ता हूँ।

साहब—जब तुम ईसाई लड़कोंके साथ रहते हो तब तुम्हारे आधे ईसाई होनेमें तो कोई सन्देह नहीं।

सुरेश—मैं यह बात कभी भी नहीं मान सकता, क्योंकि मैं उनका छुआ हुआ पान तथा पानी भी नहीं ले सकता।

साहब—लेकिन इसमें तो कोई शक नहीं कि तुम उनके साथ उठते बैठते होगे, फिर बिना नहाये ही पानी पी लेते होगे, क्योंकि पाठशालामें तुम्हारा नहाना तो नामुमकिन है।

सुरेश इसके उत्तरमें कुछ भी न कह सके। जब यह वाद-विवाद हो रहा था, दो ओरसे दो बत्ती आतीं दिखाई दीं। पास आनेसे मालूम हुआ कि एक तो सुरेशके कोई रिश्तेदार थे, और दूसरा साहब लोगोंका एक नौकर था। अन्तमें साहब लोग सुरेशसे यह प्रतिज्ञा कराके कि दूसरे दिन सुरेश फ़ैक्टरीमें आवेंगे अपने घरकी ओर चल दिये।

१०—दलदलमें कमल।

सुरेशकी बातोंको सुनकर सब साहबोंको सुरेशसे प्रेम होगया था। इसी कारण अब इनका वहाँ आना जाना भी होने लगा। उस समयके अँगरेज़ लोग देशी आदमियोंके साथ मिलने जुलनेकी इच्छा रखते थे, परन्तु देशी लोग ही फिरंगियोंके साथ मेल-जोल करना पसन्द नहीं करते थे। उस समय धार्मिक कट्टरता आज कलकी अपेक्षा कहीं ज्यादः थी। जब सुरेश नाथपुरमें रहते तो सदैव नीलकोठीको जाया करते थे। वहाँ पर अनेक स्त्रियों तथा पुरुषोंसे इनकी मित्रता होगई। वहाँके साहबकी मेम सुरेशको बहुत प्यार करती थी। उन दिनों जो अँगरेज लोग यहाँ भारतवर्षमें आते थे वे अपनी मेमोंको प्रायः साथ नहीं लाते थे। जो मेम साहबा सुरेशकी वीरता पर मुग्ध होकर उन्हें प्रेमकी दृष्टिसे देखती थीं, उनके एक सुन्दर लड़का था, जो विलायतमें शिक्षा प्राप्त कर रहा था।

सुरेशको अँगरेजोंके समाजमें रहनेसे अँगरेज़ी बोलनेका अच्छा अभ्यास हो गया था, पर अपने स्कूलकी पढ़ाईमें उन्होंने कुछ भी उन्नति न की थी। एक दिन सुरेश मेम साहबाके साथ एक टमटममें बैठे हुए घूमनेके लिये जारहे थे। अकस्मात् मेमसाहबाने गाड़ी घुमाकर काई और पत्तियोंसे भरे हुए एक तालाबके पास खड़ी कर दी। उस तालाबमें कीचड़ अधिक होनेके कारण कमल बहुतायतसे होते थे। उस समय शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रही थी। कुछ परिश्रमके कारण मेम साहबाके गालों पर रक्तवर्ण झलक रहा था। यद्यपि वे बुड्ढी थीं लेकिन फुर्ती और सौन्दर्यमें वे युवतियोंके ही समान थीं। गाड़ीसे उतर कर वे तालाबकी ओर बढ़ीं और उस सुन्दर दृश्यको देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। उनकी इच्छा हुइ कि कोई एक कमलका फूल उनके लिये ला दे, लेकिन साईस अथवा अन्य कोई नौकर साथ न होनेके कारण वे कुछ न कह सकीं। सुरेश

उनकी इच्छाको ताड़ गये। उन्होंने सोचा कि मेम साहबाको एक दो फूल चाहिये। उनका सोचना तो मानो कार्य कर डालनेके समान ही था। तुरन्त ही कमीज़ और जूते उतार कर वे तालाबकी ओर चल पड़े। मेमसाहबा बहुत डरीं और उन्होंने सुरेशको रोकनेकी चेष्टा की, परन्तु सब निरर्थक हुई। सुरेश चटसे पानीमें कूद ही पड़े, और एक बड़े फूलको लेनेकी इच्छासे आगे बढ़े। ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते थे, त्यों त्यों मेम साहबाको यह प्रतीत होता था कि वे किसी कष्टमें हैं। उन्होंने सुरेशसे लौट आनेके लिये आग्रह किया, परन्तु वीर सुरेश अपनी इच्छासे न हटे, और आगे बढ़ते ही गये। अन्तमें उनका चलना बन्द हो गया और वे लकड़ीके समान स्थिर रह गये। उनको कष्टमें देखकर मिसेज एम—ने सहायतार्थ चिल्लाना आरम्भ किया। उनकी आवाज सुनकर गाँववाले वहाँ आ पहुँचे और सुरेशको दुःखमें देख उन्होंने उनके पास एक रस्सी फेंक दी। सुरेशने रस्सीको कमरसे बाँध लिया, और फिर भी आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया। जब फूल तोड़ लिया, तो खींच लेनेके लिये इशारा किया। गाँववालोंने उन्हें तुरन्त खेंच लिया। बाहर आने पर मालूम हुआ कि वे दलदलमें फँस गये थे। इसी कारण वे इतने अशक्त हो गये थे कि मुश्किलसे बोल सकते थे। मेम साहबा उन्हें ताँगेमें रखकर अपने बंगले पर ले आईं, और वहाँ अच्छी तरह उनकी शुश्रूषा करने लगीं। सुरेश धीरे धीरे अच्छे हो गये। इन दिनों पढ़ाई न होनेके कारण सुरेश बहुत ही प्रसन्न रहते थे। मेमसाहबाने वह कमल महीनों तक रख छोड़ा था, क्योंकि उसके कारण उनके प्यारे सुरेशको इतना कष्ट सहना पड़ा था। थोड़े दिनोंके बाद सुरेशको नाथपुर छोड़कर बेलीगंज पढ़नेके लिये जाना था। मेम साहबा तथा नीलकी कोठीके अन्य कर्मचारी इनसे इतना प्रेम करने लगे थे कि इनके जानेकी खबर सुनकर सबको बहुत दुःख हुआ। अन्तमें कोठीके साहब तथा मेम साहबाने बड़े कष्टके साथ

सुरेशको विदा किया । इन दोनों प्राणियोंने कुछ वस्तुएँ सुरेशको भेंट करनी चाहीं, परन्तु सुरेशने उनको अस्वीकार कर केवल उनका आशीर्वाद लेकर यात्रा प्रारम्भ कर दी ।

११–जल-विहार ।

सुरेशके बाल्यावस्थाके खेल-कूदोंमेंसे जल-विहार भी एक था। पाठकोंको तो विदित ही है कि नाथपुर इच्छामती नदीके तट पर बसा है। यह नदी मध्य बंगालमें सबसे अच्छी तथा गहरी है, और इसी कारण बहुधा वहाँ मछली मारनेवाले रहते हैं । सुरेश भी लड़कोंकी सेनाके साथ छोटी छोटी नावों पर बैठकर इसी हेतु इधरसे उधर फिरा करते थे । नावको खेना बहुत अच्छा व्यायाम है, लेकिन इसमें अनेक खतरे भी हैं । छोटी अवस्थाके बालकोंके लिये यह बहुत ही भयानक व्यायाम है । नाथपुरसे अपने पिताके साथ ‘ कोरिया ’ में आ जानेसे सुरेशका यह मुख्य विहार जाता रहा था, क्योंकि इस स्थानसे नदी बहुत दूरी पर थी । गिरीश बाबूके पास इतना रुपया न था कि वे एक छोटीसी नाव खरीद देते । परन्तु इन बातोंके होने पर भी सुरेशने जल-विहारकी आशा न छोड़ी । उन्होंने नाव खेनेके खेलके लिये अपनी उम्रके लड़कोंकी एक सभा बना ली, और एक छोटीसी नाव भी ले ली। स्कूलके बाद एक घंटेके लिये वे अपने साथियोंके संग नदी पर जाकर नावको खूब खेते थे । अप्रैलके महीनेमें एक दिन सुरेश अपने चार साथियोंके साथ नदी पर आये । धूप बहुत तेज थी । सबके साथ सुरेश नाव पर बैठ गये, और बागकी ओर खेने लगे । बागके पास पहुँचनेवाले ही थे कि दिग्मंडलमें कुछ नीलवर्ण वस्तु उनको दिखलाई पड़ी । देखते ही देखते उनके चारों ओर घनघोर घटा छा गई । पृथ्वी लगभग अन्धकारमय हो गई । थोड़ीही देरमें विकट आँधी और पानी आ पहुँचे । सुरेश तथा उनके साथियोंको इसका लेश मात्र भी ध्यान न था । आँधीके कारण लड़के

नावको सीधी न रख सके । नाव बराबर चक्कर खाने लगी । अन्तमें एक लंगरसे टक्कर खाकर ऊपर उछलकर पलट गई और डूबने लगी । पाँचों बालक नदीमें गिर पड़े, और नदीकी तेज धाराके साथ समुद्रकी ओर बह चले । उस समय उधरसे एक स्टीमर आ रहा था । इस स्टीमरकी सहायतासे सुरेशके तीन साथी तो बचा लिये गये। सुरेश और उनका एक साथी इतनी दूर निकल गये थे कि स्टीमरवाले उन्हें न देख सके । सुरेशका साथी तैरना कुछ कम जानता था, इस लिये सुरेश उसको बराबर सहायता देते थे । अन्तमें वह साथी थक कर डूब गया, और सुरेश उसी प्रकार बहते हुए चले । समुद्रकी तरङ्गोंके कारण सुरेश बराबर उसी तरफ बहते जाते थे । भाग्यसे एक जर्मन पोतके किसी व्यक्तिने उन्हें देख लिया । उसे दया आ गई, और उसने तुरन्त एक रस्सी छोड़ दी । सुरेशने उसे पकड़कर चढ़नेकी बहुत चेष्टा की, परन्तु थक जानेके कारण उनके हाथसे रस्सी छूट गई और वे फिर पानीमें गिर पड़े । उनकी यह दशा देखकर कप्तानको रहम आ गया । उसने तुरन्त एक छोटीसी नाव उतरवा दी । कई मनुष्योंने बड़ी कठिनाईसे सुरेशको नाव पर उठा लिया । उस समय वे इतने बेहोश हो गये थे कि जहाजके सरजन तथा अन्य व्यक्तियोंके कोशिश करने पर भी वे सुबहसे पहले अच्छे न हुए । सबेरे जब अच्छे हो गये तो कप्तानने किराये पर एक गाड़ी करके सुरेशको उनके माता पिताके पास भेज दिया ।

१२–फिरंगियोंकी मरम्मत ।

सुरेश तथा उनके साथियोंको केवल जल-विहारका ही शौक न था, बल्कि वे सदैव एडन गार्डन इत्यादिकी भी सैर किया करते थे, और बहुधा वहाँ अपनी अवस्थाके अँगरेज बालकोंके साथ खेला करते थे । एक दिन सुरेश अपने एक साथीको लेकर दौड़ देखनेके लिये गये । वहाँ पर इनकी दो यूरेशियनोंसे भेंट हो गई । वे दोनों यूरेशियन लड़के सुरे-

शसे अवस्थामें बहुत बढ़े थे। वे दोनों सुरेश तथा उनक साथीको छेड़ने और गालियाँ देने लगे। सुरेश इस तरह तिरस्कार सहनेवाले न थे। उन्होंने उन सब बातोंको व्याजसहित वापिस करना शुरू कर दिया। झगड़ेका समय निकट आया देख सुरेशका साथी चुपचाप सटक दिया। सुरेशके वचनोंने उन यूरेशियन युवाओंको यहाँ तक नाराज कर दिया कि उन्होंने तुरन्त सुरेश पर आक्रमण किया। सुरेश भी इसके लिये पहलेसे ही तय्यार थे—उन्होंने अपने कठोर मुक्कोंसे यूरेशियनोंकी पूरी तरहसे मरम्मत की। यहाँ तक कि वे दोनों युवा सुरेशके मुक्कोंकी मार न सहकर पृथ्वी पर गिर पड़े। अपने शत्रुओंको गिरा देख सुरेशने उनको और न मारा, बल्कि वे उनको आराम देनेका यत्न करने लगे। सुरेशकी यह उदारता थी।

१३–कठिनाइयोंकी वृद्धि।

सुरेश अभी तक लन्दन मिशनरी स्कूलमें ही थे। उनसे केवल उनके साथी ही नहीं बल्कि स्कूलके मास्टर भी डरते थे। उनका एक बड़ा भारी गिरोह था। उसमें उन्हींके समान उद्दण्ड और निडर लड़के भरे हुए थे। सुरेशके गिरोहका भय केवल स्कूलवालोंको ही नहीं, बल्कि पड़ोसियों और दूकानदारोंको भी था। ऐसी शरारतोंके लिये वे सदैव सुबह साढ़े नौ बजे इधर उधर निकल जाते थे। वे महीनेमें केवल दस दिन स्कूलको जाते थे। सदैव दोपहरके वक्त स्कूलके पास ही ऊधमी लड़कोंकी एक सभा सी होती थी। उनकी उद्दण्डतासे उनके माता पिताको बहुत दुःख होता था। उनके पिता सदैव उनसे क्रुद्ध रहते थे, लेकिन उनकी माता सदैव उनका (सुरेशका) पक्ष लेती थीं। बाबू गिरीशचन्द्र विश्वासको अपने पुत्रके भावी जीवनका बहुत ध्यान था। जब कभी वे सोचते थे कि सुरेश

समझाने तथा डाँटने पर भी पढ़ने लिखनेमें ध्यान नहीं देता, तो उनको बहुत दुःख होता था। सुरेश इतने चतुर थे कि यदि उनका ध्यान पढ़ने-लिखनेकी ओर होता, तो वे विद्वान् हो सकते थे। उनका चित्त पढ़नेमें लगानेके लिये सब मास्टरोंने कोई बात उठा न रक्खी थी। यहाँ तक कि उस स्कूलके प्रिंसीपल साहब मिस्टर आष्टनने भी एतदर्थ बहुत प्रयत्न किया था, परन्तु अन्तमें उन्होंने भी हार मान ली। जब सुरेश शामको लौटकर घर जाते थे, तो उनपर खूब फटकारें पड़ा करती थीं। तंग आकर सुरेशने घर जाना लगभग बिल्कुल बन्द कर दिया। सप्ताहमें एक दो बार ही आया करते थे। शेष समय वे अपने ईसाई मित्रोंके साथ बिताया करते थे। कारण यह था कि पहले सुरेशका जो भाव ईसाइयों तथा उनके धर्मके प्रति था, वह अब जाता रहा था। अब वे विना किसी दुबिधाके अपने क्रिश्चियन मित्रोंके साथ आहार-विहार करते थे। हिन्दूधर्ममें उनकी श्रद्धा बिल्कुल नहीं रही थी। अभिप्राय यह है कि उनके आचार-व्यवहार बिल्कुल भ्रष्ट हो गये थे। उन दिनों पाद-रियोंने ऐसा उपद्रव मचा रक्खा था कि जो कोई मिलता उसीको वे समझा-बुझाकर क्रिस्तान बना लेते थे।

इस स्थानपर दो चार बातें मिशनरियों तथा मिशनोंके बारेमें लिखना अप्रासंगिक न होगा। यह हम नहीं कहते कि मिशनरी लोगोंसे हिन्दु-स्तानका कुछ भी उपकार नहीं हुआ। सर्वसाधारणमें शिक्षा प्रचारार्थ स्कूल खोलकर, तथा रोगियोंके लिये अस्पताल खोलकर मिशनरी लोगोंने हमारे देशकी बहुत कुछ भलाई की है। इस उपकारके लिये हम उनके अत्यन्त अनुग्रहीत हैं; लेकिन तब भी हमें यही कहना पड़ेगा कि इन लोगोंने हमारे देशकी बड़ी हानि भी की है। ईसाई लोगोंके हृदयमेंसे राष्ट्रीयताके भाव बिल्कुल जाते रहते हैं। विलायतसे जो लोग यहाँ ईसाई धर्मके प्रचारार्थ आते हैं, उनके विषयमें वहाँवालोंका यह मत है

कि ये लोग असभ्य भारतवासियोंके जंगलीपनको दूर करनेके लिये बड़ा भारी आत्मत्याग कर रहे हैं। अगर देखा जावे तो यही ज्ञात होगा कि अधिकांश मिशनरी बड़ी मौजसे रहते हैं। विलायतके निवासी इन मिशनरियोंकी करतूतको न समझकर उन्हें हर प्रकारकी सहायता दिया करते हैं। मिशनरी लोग अँगरेज सौदागरोंके साथ साथ ही हिन्दुस्तानमें नहीं आये थे। जिस समय इन सौदागरोंका व्यापार बहुत कुछ जम गया था, और उनका राज्य धीरे धीरे यहाँ बढ़ रहा था, उसी समय मिशनरी लोगोंके चरण-कमल यहाँ आये। एक स्वतंत्र जातिको परतंत्र बनानेके लिये कोई न कोई बनावटी उद्देश्य भी तो होना चाहिये था, यही सोच कर विलायतवालोंने मिशनरी लोगोंको यहाँ भेजना शुरू किया, जिससे संसार यह समझे कि अँगरेज लोगोंका उद्देश्य स्वार्थसिद्धिके लिये राज्य-विस्तार करना नहीं है, बल्कि अन्धकारमें पड़े हुए हिन्दुस्तानियोंके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश फैलाना है। फिर क्या था, इन मिशनरियोंकी सहायताके लिये पानीकी तरह रुपया बहाया गया। भारतवर्षमें मिशनरियोंकी भरमार कर दी गई। नगर नगरमें मिशन स्थापित होने लगे। जगह जगह पर मिशनरी लोगोंके रहनेके लिये बड़े बड़े सुन्दर मकान बनने लगे। विलायतवाले समझते थे कि सात समुद्रपार काले आदमियोंके बीचमें रहकर हमारे मिशनरी भाई कितने कष्ट न पाते होंगे। यही विचार कर उन्होंने मिशनरियोंको मुक्तहस्तसे सहायता दी। संसार यह समझने लगा कि अँगरेज लोगोंने स्वार्थसिद्धिके लिये भारतको ग्रहण नहीं किया, बल्कि भारतवासियोंका उद्धार करना ही इनका एक मात्र उद्देश्य है।

पहले तो इन मिशनरी लोगोंने यह सोचा कि भारतवासियोंको ईसाई बनानेका सबसे सीधा तरीका यह है कि इन्हें अँगरेजी शिक्षा दी जावे। अँगरेजी शिक्षाके प्रभावसे इनके मूर्तिपूजा इत्यादि जो कुसंस्कार हैं वे अपने आप दूर हो जावेंगे। उस समय इन्हें ईसाई बनालेनेमें बड़ी

आसानी होगी। यही विचार कर ईसाई लोगोंने यहाँ विद्यालय और चिकित्सालय खोलना प्रारम्भ किया। इधर धीरे धीरे समस्त देश अँगरेजोंके अधीन हो रहा था। अँगरेजी राजभाषा बन रही थी। बिना अँगरेजी पढ़े काम नहीं चल सकता था। यही सोचकर बहुतसे लोगोंने मिशनरी स्कूलोंमें भरती होना आरम्भ कर दिया। केवल दरिद्रताके कारण कितने ही लोगोंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इसका प्रमाण यही है कि आज कल भी जितने ईसाई हैं, उनमेंसे शायद ही कोई बड़े तथा धनाढ्य घरानेका हो। यद्यपि वे जीविकाके हेतु क्रिस्तान हो जाते हैं और 'ऐण्ड्रयू' 'पेड्रो' इत्यादि ऊटपटाँग क्रिस्तानी नाम रख लेते हैं, तथापि उनमेंसे कितने ही अपने प्राचीन देवी देवताओंकी मूर्तियोंके सामने भी प्रणाम करते हैं। किसीका समय सदा एकसा नहीं रहता, तदनुसार अब ईसाई धर्मका प्रचार भी बहुत कम हो गया है। आजकल फिरसे हिन्दू धर्मकी उन्नति हो रही है।

१४—धर्म-परिवर्तन।

शायद पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य्य होगा कि वही सुरेश जिनका कि हिन्दू धर्म पर यहाँतक विश्वास था कि छोटी उम्रमें ही उन्होंने अँगरेज प्लाण्टरका आतिथ्य स्वीकार नहीं किया था, अब ईसाई हो गये हैं। इस अध्यायमें उनके धर्मपरिवर्तनके कारण दिये जाते हैं। सुरेशकी आदतें दिन-ब-दिन ऐसी खराब होने लगीं थीं, कि उनके काका भी, जो अभी तक सुरेशको बहुत चाहते थे, उनसे घृणा करने लगे थे। उनके पिता गिरीश बाबू कट्टर वैष्णव थे। सुरेशको सन्मार्ग पर लानेके लिये वे भाँति भाँतिके दंड दिया करते थे, लेकिन सुरेश उनकी कुछ पर्वाह न करते थे, और बहुधा आवारा ईसाई लड़कोंके साथ इधर उधर घूमा करते थे। केवल उनकी माताको छोड़ सभी घरवालोंको उनसे एक प्रकारकी घृणासी हो गई थी। इसी कारण सुरेशका भी मन

वहाँसे हट गया था । इस झकझकमें कुछ समय व्यतीत हुआ । उधर तो गिरीश बाबू सुरेशको राहपर लानेकी कोशिश कर रहे थे, और इधर सुरेश घरसे बिल्कुल सम्बन्ध तोड़ देनेका प्रयत्न कर रहे थे । अन्तमें एक दिन पिता और पुत्रके बीच बातों बातोंमें इतना झगड़ा हो गया कि सुरेश एक दम घरसे चल दिये, और कभी न लौटनेकी प्रतिज्ञा कर बैठे । अपने कुछ ईसाई मित्रोंसे उन्होंने इस विषयपर राय ली । उनके मित्रोंने उनको यहाँ तक आश्वासन दिया कि वे सुरेशको अपने घरपर रख लेंगे, पर सुरेशने उनकी एक न मानी । अपने शुभचिन्तक मि० आष्टनसे उन्होंने सब हाल कह सुनाया । उस दुःखसे छूटनेके लिये मिस्टर आष्टनने उनसे ईसाई हो जानेके लिये कहा। थोड़े दिन तक बाइबल पढ़ाकर मि० आष्टन-ने उन्हें ईसाई धर्मकी दीक्षा दे दी । जब सुरेशके पिता तथा अन्य कुट-म्बियोंने यह समाचार सुना तो उन्होंने यह प्रण कर लिया कि वे सुरे-शका मुँह कभी न देखेंगे । अब सुरेश बिना घर-वारके हो गये । परन्तु मिस्टर आष्टनने उन्हें एक घर देकर सब बातोंका प्रबन्ध कर दिया । अगर सुरेश चाहते तो बाइबिलको अच्छी तरह पढ़कर पादरी बन जाते, और इस प्रकार अपनी जीविका सरलतासे चला सकते थे, परन्तु सुरे-शके समान नवयुवकोंसे ऐसी आशा करना व्यर्थ था ।

वे नौकरी ढूँढ़ने लगे, परन्तु अशिक्षित और कम उम्र होनेके कारण उन्हें कहीं भी नौकरी न मिली । इससे उनके चित्तको बहुत दुःख हुआ । वे कर ही क्या सकते थे ? जिसके पास वे जाते वही उन्हें फटकारता था। किसीने ठीक कहा है " घर छूटे विपदा पड़ी सहियत बोल कुबोल।" सुरेशके कष्ट दिन दिन बढ़ने लगे । अन्तमें दैवयोगसे उनको एक होटलमें छोटीसी नौकरी मिल गई । अब वे स्पेन्सके होटलके पथ-दर्शक हो गये । उनको केवल स्टेशन तक जाना पड़ता था, और अँगरे-जोंको, जो देश देशान्तरोंसे आते थे, होटल तक ले आना पड़ता था ।

समय समयपर उनको मुसाफिरोंके साथ चारों तरफ शहरमें घूम घूम कर सब स्थान बतलाने पड़ते थे। थोड़ी बहुत अँगरेजी जाननेके कारण वे उन लोगोंसे भली भाँति बात चीत कर लेते थे। वे अपने कार्य्यमें इतने कुशल थे कि जो लोग वहाँ आकर ठहरते थे सदैव उनसे प्रसन्न रहते थे। थोड़े दिनोंके बाद इस कार्य्यसे भी उनको घृणा हो गई। अब उनके चित्तमें यूरोपीय देशोंमें भ्रमण करनेकी इच्छा समाई थी। वे सदैव किसी न किसी प्रकार वहाँ जानेकी चेष्टामें रहने लगे। लेकिन प्रश्न यह था कि रुपया कहाँसे आवे? अब उन्हें अपने प्रिय काका तथा मातासे भी रुपया मिलना असम्भव होगया था। सुरेशकी विदेश जानेकी इच्छा इतनी प्रबल हो गई कि उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली कि चाहे कुछ क्यों न हो, विदेश-यात्रा अवश्य करूँगा। मिस्टर आष्टन भी उनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कोई उपाय सोच रहे थे। यद्यपि उन्होंने फिर भी सुरेशकी उन्नतिके लिये बहुतसे प्रयत्न किये परन्तु वे सब निरर्थक ही हुए। लेकिन ये कर ही क्या सकते थे? सुरेशका तो बाल्यावस्थासे ही 'सरस्वती' से विरोध था। फिर भी मिस्टर आष्टनने उनके सुधारके लिये बहुत कोशिश की। सुरेशको वे अपने पुत्रके समान ही मानते थे। निम्नलिखित पत्र, जो मिस्टर आष्टनने लैफंट नामक एक पादरी साहबको सुरेशके छोटे भाईका उनसे परिचय करानेके लिये लिखा था, स्वयं मिस्टर आष्टनकी कृपा तथा प्रेमका प्रमाण है।

"ये महाशय बाबू सुरेशचन्द्र विश्वासके, जो हमारे स्कूलके विद्यार्थी थे, और २१ वर्ष पहले हमारे मिशनसे ही ईसाई हुए थे, भाई हैं। मुझे उनसे बहुत प्रेम था, यहाँ तक कि हमारे घरमें उनकी युरोपीय देशोंमें भ्रमण करनेकी इच्छा इतनी प्रबल हो उठी कि उसे कोई न रोक सका। अन्तमें उन्होंने युरोपकी यात्रा की। वे यहाँसे लन्दन तक बी. आई. स्टीमरके स्टीवार्डके सहायक होकर गये थे। वहाँ पहुँचकर वे मेरे माता-

पिताके पास गये। मेरे माता-पिता तथा मेरी बहिनने उनकी बातोंको बड़ी दिलचस्पीके साथ सुना। वहाँ पर उन्हें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। बहुतसे कष्ट पाते पाते आखिर उनकी मुलाकात मि० जम-रेक साहबसे हुई। साहबने उनको अपने यहाँ नौकर रख लिया और थोड़े दिनों बाद सुरेश उनके दलमें शेरको पालतू बनानेका काम करने लगे। अपने इस कौशलको उन्होंने युरोपके अधिकांश नगरोंमें दिखलाया और लंदनके 'कृषि-भवन' में भी प्रदर्शित किया। बहुत दिनों तक इधर उधर चक्कर मारने बाद वे ब्रेजिलके रायो–डि–जेनिरो नामक स्थान-में रहने लगे। अब भी वे वहीं पर हैं। वहाँ पर वे कई पदों पर रहे हैं। एक बार वे वहाँके अजायबघरके प्रबन्धकर्ता भी थे। आश्चर्यकी बात है कि वे अन्तमें ब्रेजिलकी फौजमें भर्ती हो गये और उसमें वे लैफ्टीनेण्ट-के पद पर पहुँच गये। वहाँसे उन्होंने अपने घरवालोंके पास कुछ वि-ज्ञापन तथा समाचारपत्र भेजे हैं। परन्तु मेरी समझमें ये पत्र पोर्चुगीज भाषामें हैं। उनका अनुवाद करानेके लिए * * * बहुत चिन्तित हैं। उनको और मुझे भी यह बात सूझी है कि शायद आप पोर्चुगीज भाषाके पत्र पढ़ सकें। अगर आप न पढ़ सकेंगे तो कोई दूसरे पादरी साहब पढ़ सकेंगे। अगर आप अथवा कोई अन्य सज्जन इनका अनुवाद करनेका कष्ट उठावें और यदि शाब्दिक अनुवादकी आशा न भी हो (अगर कोई आपका अधीनस्थ कर्मचारी इस काममें सहायता देनेके लिये मिल जावे तो दूसरी बात है), तो इन लेखोंके भावार्थसे ही हमें प्रसन्नता होगी।"

१५–ब्रह्मदेशकी यात्रा।

दिन दिन सुरेशकी इच्छा कलकत्ता छोड़कर अन्य देशोंकी यात्रा करनेके लिये बढ़ती ही गई। अन्तमें वे ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नैवीगेशन कम्पनीके दफ्तरमें जा पहुँचे। वहाँ पर नौकरी कर रंगून-यात्रा-की तय्यारी की। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वे विलायत जानेके लिये

बहुत उत्सुक हो रहे थे, परन्तु पासमें खर्च न होनेके कारण लाचार थे। उन दिनों ब्रह्मदेशकी दशा बहुत बुरी थी। दक्षिणी वर्मामें अँगरेजोंका अधिकार अच्छी तरह नहीं जम पाया था, और उत्तरी वर्मा अभी तक देशी राजाओंके अधीन था। वहाँ पर अँगरेजी जाननेवालोंकी बहुत आवश्यकता थी। यही सोचकर कि वहाँ अवश्य ही कोई न कोई नौकरी मिल जायगी, सुरेशने वहाँ जानेका निश्चय किया था। उनके पास इतना रुपया तो था ही नहीं कि वे वहाँ वगैर नौकरीके ही रह सकते। इस लिये ब्रह्मदेश पहुँच कर वे सबसे पहले एक कम किरायेवाला मकान ढूँढ़ने लगे। अभी वे मकान ढूँढ़ ही रहे थे कि उनको अपने एक पुराने मित्र मिल गये। मित्रने उन्हें अपने घर पर ठहरा लिया। सुरेशने भी नौकरी न मिलने तक वहाँ ठहरनेका निश्चय किया। उन दिनों रंगूनकी दशा बहुत गिरी हुई थी। यह बहुत भयानक तथा मैला कुचैला शहर था। चारों ओर निडर डाकुओंके झुण्ड ही दीख पडते थे। पुलिसका प्रबन्ध भी कुछ ढीला ढाला सा ही था। दूरकी तथा शहरके पिछले भागकी सड़कों पर दिनको भी चलना कुछ आसान नहीं था, फिर रातकी तो बात ही क्या पूछना है। अनजान विदेशी तो प्रायः उन डाकुओंकी शिकार बनते थे। सुरेशके मित्रने उन्हें इन सब विपत्तियों और खतरोंसे सावधान कर दिया था। मित्रकी दी हुई चेतावनीका कुछ भी प्रभाव सुरेशपर पड़ा या नहीं, इसका पता आगेकी घटनासे चल जायगा।

१६—डाकुओंसे दो दो हाथ।

नावमें चढ़कर इधर उधर घूमनेका शौक सुरेशको अभी तक था। एक दिन वे दो पहरके समय नाव पर चढ़कर इरावती नदीके किनारे किनारे अपनी नाव खेने लगे। ज्यों ही सन्ध्या होने लगी त्यों ही उन्होंने नावको किनारे पर बाँध कर घर तक टहलते हुए जानेका निश्चय किया। वे निडर होकर धीमे धीमे चलने लगे। उनके पास उस समय

कोई भी हथियार न था । यहाँ तक कि एक रूलरके अतिरिक्त हाथमें एक छोटीसी छड़ी भी न थी । सुरेश अपनी वर्तमान दशा पर विचार करते हुए घरको आ रहे थे । राहमें उनको दो किसानोंके अतिरिक्त और कोई न मिला । जब सुरेश एक अँधेरी गलीसे जा रहे थे, उनको एक ऐसा शब्द सुनाई पड़ा कि जैसे किसीने उनकी ओर पत्थर फैंका हो । परन्तु वृक्षमें लगनेसे उन्हें मालूम हो गया कि वह पत्थर नहीं वरन् किसी डाँकूकी फैंकी हुई एक प्रकारकी छोटी वर्छी थी । वे थोड़ी दूर ही आगे बढ़े होंगे कि किसीने फिर वही हथियार फैंक कर मारा, परन्तु ईश्वरकी कृपासे दोनों चोटें निष्फल ही हुईं। शीघ्र ही सुरेशको दो मनुष्य अपने पर आक्रमण करते हुए दिखाई पड़े । सुरेशको अब अपने मित्रकी चेतावनी-की याद पूरी तरहसे आगई । अब उन्हें अपनी रक्षाकी कोई आशा न थी । अन्तमें यह विचार करके कि अगर मरना है तो वीरताके साथ ही क्यों न मरें, वे दो तीन कदम पीछे हटकर और फुटरूलर अच्छी तरह हाथमें पकड़कर, खड़े हो गये, और दाँत पीस पीस कर अपने शत्रुओं-की प्रतीक्षा करने लगे । इनको बहुत छोटा समझकर उनमेंसे एकहीने पहले आक्रमण किया । सुरेश उनकी मरम्मत करनेके लिये तय्यार थे । वह डाँकू पास आया ही था कि सुरेशने तान कर खोपड़ेमें रूलर जमा ही दिया । उसके लगते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा । अपने साथीकी यह दशा देखकर दूसरे डाँकूसे न रहा गया । उसने फुर्तीसे आक्रमण कर सुरेशके हाथसे रूलर गिरा दिया । अब क्या था, दोनों निहत्थे थे, दोनोंमें कुश्ती होने लगी। थोड़ी देरमें ही सुरेशको पता लग गया कि इस डाँकूसे मल्लयुद्धमें जीतना सर्वथा असम्भव है । सुरेश पृथ्वी पर गिरने-वाले थे कि उधरसे एक बारात आ निकली । यह अच्छा मौका पाकर सुरेशने सहायताके लिये जोरसे चिल्लाना शुरू किया । डाकू यह सोच-कर कि शायद बचनेका मौका न मिले सुरेशको छोड़कर भाग गया । इसी समय वहाँ कुछ लोग पहुँच गये और उन्होंने सुरेशको बचा लिया ।

१७—एक युवतीकी प्राण-रक्षा ।

कई दिन तक सुरेश रंगूनके सरकारी और गैर सरकारी आफिसोंमें घूमते रहे । जहाँ जहाँ नौकरी मिलनेकी कुछ भी उम्मेद थी, वहाँ वहाँ वे गये । लेकिन नौकरी मिलना तो दूर रहा उन्हें कहीं किसीने कुछ भरोसा भी न दिलाया । जिस दिन वे नितान्त निराश होकर रंगून नगरको छोड़नेवाले थे उसी दिन सन्ध्याको उनके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि चलो आज रंगूनकी सड़कोंपर घूम तो आवें । वे घूमनेके लिये निकले थे कि उन्हें थोड़ी दूर पर मनुष्योंका कोलाहल सुनाई दिया । आगे चलकर देखते क्या हैं, कि आग लग गई है । लोग चिल्ला रहे थे—"चलियो, चलियो, दौड़ियो, आग लग गई।" आग एक घरमें लग गई थी, और उसके निकटके घरोंमें भी फैलती जाती थी । कई सौ आदमी वहाँ इकट्ठे हो गये थे, लेकिन दो चारको छोड़कर बाकी सब तमाशा ही देख रहे थे। कुछ लोग पानी लाकर आग बुझानेकी चेष्टा करते थे । इस दृश्यको देखकर भला सुरेश कब चुप रह सकते थे ! वे तुरन्त ही आग बुझानेवालोंको सहायता देने लगे । परन्तु इन लोगोंके प्रयत्नसे आग बुझी नहीं, बल्कि वह बढ़ती ही गई ।

यह कोलाहल हो ही रहा था कि इतनेमें उस घरमेंसे एक रमणीका आर्तनाद सुनाई पड़ा । सब लोग अचम्भित होकर उस घरकी ओर देखने लगे । दुमँजिले परकी खिड़की फौरन खोल दी गई । खिड़की खुलते ही उस धुआँधार घरमें भीतर एक अभागी युवती दिखाई पड़ी । वह अपने हाथ फैलाये हुए थी और धुआँके मारे उसका दम घुटा जाता था । उसका मुँह पीला पड़ गया था, और उसकी दशा करुणाजनक थी । इस हृदय-विदारक दृश्यको देखकर सब दर्शकोंको बड़ा दुःख हुआ, लेकिन यह हिम्मत किसीकी भी न हुई कि आगमें कूदकर उस अबलाकी रक्षा करे । दर्शकगण भीत और चकित हुए खड़े थे और उस

स्त्रीकी भयंकर दुर्दशाको देख रहे थे। किसीके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकलता था।

यह सोच करके कि यह रमणी शीघ्र ही भस्म हो जायगी सुरेशके हृदयमें बड़ी वेदना हुई। उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ हो इसके प्राण बचानेका प्रयत्न अवश्य करूँगा। उन्होंने पास खड़े हुए लोगोंसे एक नसैनी लानेके लिये कहा। नसैनी फौरन ला दी गई। सुरेशने तुरन्त एक कलसा पानी अपने ऊपर डाल लिया और वे झट ही उस नसैनीको दीवालके सहारे लगाकर चढ़ने लगे। १५ वर्षके बालकके इस असीम साहसको देखकर सारेके सारे दर्शक भौंचक्केसे हो गये। चारों ओर आग लग रही थी। बड़ी कठिनतासे और झुलसते हुए सुरेश उस खिड़कीके पास जा पहुँचे। खिड़की जल रही थी। उस जलती हुई खिड़कीमेंसे भीतर कूदना कोई सरल बात न थी। सामने ही वह युवती खड़ी हुई थी, और उसके चारों ओर धुआँ ही धुआँ दीख पड़ता था। सुरेशका हृदय दुबिधामें पड़ गया। लेकिन यह दुबिधा बहुत देरतक नहीं रही। सुरेश यह निश्चय कर ही चुके थे कि चाहे मेरी मृत्यु हो जावे, मैं इस स्त्रीको अपने प्राण रहते मरने नहीं दूँगा। बस फौरन ही उन्होंने बड़ी फुर्तीके साथ उस नसैनीके एक डंडे परसे छलाँग मारी और झटसे उस खिड़कीमेंसे कमरेके भीतर जा गिरे। वह लड़की उस कमरेमें निस्तब्ध खड़ी हुई थी। उसके चारों ओर आगकी लपटें थीं। सुरेश सोचने लगे कि इसे लेकर बाहर किस तरह निकलूँ? उस कमरेमें थोड़ी देर और ठहरना मानों अपने प्राण देना था।

सुरेशने व्याकुल होकर अपने चारों ओर देखा, लेकिन बाहिर निकलनेका कोई उपाय न सूझ पड़ा। उन्होंने तुरन्त ही कुछ पीछे हटकर जोरसे एक लात उस खिड़कीमें मारी। लात मारते ही वह अधजली खिड़की धड़ाम धम नीचे गिर पड़ी, लेकिन दुर्भाग्यवश उसके सहारे

2220

रक्खी हुई वह नसैनी भी नीचे आ गिरी । तब उन्होंने चिल्लाकर नीचे खड़े हुए लोगोंसे कहा—" भाइयो, नसैनी दीवालमें लगाओ । " उस कोलाहलमें पहले तो उनका चिल्लाना किसीने सुना ही नहीं, लेकिन फिर किसी दर्शकने उनकी बात समझ ली । नसैनी ठीक जगह पर लगा दी गई । नीचे उस नसैनीको कितने ही मजबूत आदमी पकड़े हुए थे, ताकि वह दो आदमियोंके बोझसे गिर न पड़े । फिर सुरेशने उस युवतीको गोदीमें उठाकर नसैनीके सहारे नीचे उतरना शुरू किया । लगभग तीन चार गज नीचे और उतरना था कि नसैनीका डंडा टूट गया और दोनों आदमी नीचेकी ओर गिरे । सौभाग्यवश नीचे खड़े हुए आदमियोंने उन्हें हाथों पर ही ले लिया । उनके कोई चोट नहीं लगने पाई ।

सुरेश नीचे खड़े भी नहीं होने पाये थे कि उनका सिर चकरा गया । थोड़ी देरमें वे बेहोश हो गये । उनका शरीर कई जगह जल गया था, और धुँएके मारे उनका दम घुट गया था । नीचे पहुँचने पर क्या हुआ, इस बातका उन्हें बिल्कुल ज्ञान न रहा । जब उन्हें होश आया तो मालूम हुआ कि वे अपने मित्रके घर पर पड़े हुए हैं । जिस रमणीकी प्राणरक्षा सुरेशने की थी, उसके घरवालोंने उनकी बडी सेवा-शुश्रूषा की । सुरेशकी जेबमें एक कागज पड़ा हुआ था, जिसपर उनके एक मित्रका पता लिखा हुआ था । इस पतेको देखकर ही वे लोग सुरेशको उनके मित्रके पास ले गये थे ।

वह रमणी भी सुरेशकी टहल करती थी । थोड़े दिनोंमें वे भले चंगे हो गये, किन्तु उन्हें अब ज्ञात हुआ कि वह रमणी उन्हें प्राणोंसे प्रेम करती है । इस प्रेमका बदला देनेमें वे असमर्थ थे । वे सोचते थे " मैंने ही इस युवतीको जीवन-दान दिया है, अब मैं इसके साथ विवाह कैसे कर सकता हूँ । "

सुरेशके इस विचारसे उस लड़कीको बडा दुःख हुआ, और स्वयं सुरेश

के हृदयको भी वेदना हुई । अन्तमें उन्होंने रंगून छोड़कर कहीं और जानेका निश्चय कर लिया ।

१८–मदरास-यात्रा ।

रंगूनसे सुरेश कलकत्तेको नहीं लौटे । रंगूनमें मदरासियोंकी संख्या अधिक है । वहीं पर कई मदरासियोंसे उनका परिचय हो गया था । सुरेशने मनमें विचारा कि चलो मदरास चलें, वहाँ हमें कोई न कोई नौकरी मिल ही जावेगी । इसी विचारसे उन्होंने जहाजका टिकट खरीद लिया । मदरासमें भी उनका किसीसे परिचय नहीं था । फिर भी उन्होंने किसी न किसी प्रकार अपने रहनेका ठीक ठाक कर लिया । कई स्थानोंपर उन्होंने नौकरी तलाश की, पर उनको कोई नौकरी न मिली । उनके पास अब पाँच सात आनेके पैसे बचे थे, इस लिये अब उनके सामने जीवन-मरणकी कठिन समस्या उपस्थित हुई । परन्तु फिर भी उन्होंने आशा न छोड़ी । एक दिन वे यही विचारते हुए कि अब क्या करना चाहिये समुद्र-तट पर टहल रहे थे । उनके दिलमें बारबार यही विचार आता था कि आतमघात कर लें, परन्तु वे फिर धीरज रखकर सम्हल जाते थे । अकस्मात् सुरेशकी दृष्टि एक वृद्ध आदमी पर पड़ी । सुरेशने तुरन्त उन महाशयके पास जाकर सादर प्रणाम किया । वृद्ध महाशय मिस्टर पी० उनके बर्तावसे बहुत प्रसन्न हुए, और उनके दुःखकी कहानी सुनने लगे । उनका हृदय सुरेशकी रामकहानी सुनकर इतना द्रवित हो गया था कि उन्होंने तुरन्त सुरेशकी सहायता करनेका संकल्प कर लिया । उन्होंने सुरेशको अपने नातियोंकी देखभाल करनेके लिये रख लिया । सुरेशने यह कार्य्य इतने परिश्रमसे किया कि थोड़े ही दिनोंमें वे वृद्ध महाशय तथा उनके सब घरवाले सुरेशपर बहुत प्रेम करने लगे । कई महिने तक सुरेश उस घरमें रहे । जब उनके पास कुछ रुपया जमा हो गया तो उन्होने कलकत्ते लौटनेका निश्चय किया ।

१९-कलकत्ता-यात्रा ।

कलकत्ते पहुँचनेपर सुरेश नौकरीके लिये फिर इधर उधर घूमने लगे, पर उनको नौकरी कहीं न मिली । मिस्टर आष्टनने उनके खाने-पीनेका प्रबन्ध कर दिया था, इस लिये उन्हें अधिक कष्ट न था । अपनी माताके पाससे भी वे कुछ न कुछ माँग ही लेते थे । परन्तु इस तरह समय काटना बिल्कुल निरर्थक और हानिकारक था, इस लिये उन्होंने कुछ न कुछ पढ़नेका निश्चय कर लिया । उपन्यासोंसे उन्हें विशेष प्रेम नहीं था । वे उन्हीं किताबोंको पढ़ते थे, जिनमें नये नये देशोंका वर्णन होता और जिनमें कुछ न कुछ शिक्षा-प्रद बातें होतीं । धीरे धीरे उनकी बुद्धि बढ़ने लगी । इतनी दीन दशा होनेपर भी बार बार उनके हृदयमें यूरोपीय देशोंमें भ्रमण करनेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न होती थी । परन्तु हो ही क्या सकता था ! वे बहुधा अँगरेज नाविकोंके पास जाकर समुद्र-यात्रा तथा पश्चिमी देशोंके विषयमें पूँछ ताँछ किया करते थे । इन बातोंसे उनकी इच्छी और भी बढ़ती जाती थी । उन्होंने कई जहाजोंमें नौकरी तलाश की, परन्तु उनको सब ओरसे सूखा जवाब मिल गया । यहाँ तक कि मामूली नाविककी भी नौकरी मिलना उनको कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव मालूम होता था । उन्हें चारों ओर निराशा दीख पड़ती थी ।

२०-मातृभूमिसे विदा ।

उनको इधर उधर भटकते भटकते कई सप्ताह हो गये । अन्तमें उनकी भेंट एक जहाजके कप्तानसे हुई । सुरेशने यह सुअवसर हाथसे न जाने दिया । उन्होंने तुरन्त कप्तानसे मेल-जोल करना आरम्भ कर दिया । थोड़े ही दिनोंमें वे दोनों परम मित्र हो गये । उन्होंने अपने दिलकी बात कप्तान साहबसे कह डाली । यद्यपि कप्तान उनकी अवस्था देखकर

पहले जरा कुछ हिचकिचाये, परन्तु सुरेशकी बातोंका उनपर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे वे सुरेशको अपने जहाजका भंडारी बनाकर इँग्लैण्ड लेजानेके लिये राजी हो गये । जहाज कई दिन बाद कलकत्तेसे चल दिया । जो व्यक्ति सदैवके लिये अपनी मातृभूमिसे विदा हो रहा हो, उसके शोकका क्या ठिकाना ? बहुत प्रयत्न करने पर भी वे अश्रुधारा-का प्रवाह न रोक सके । परन्तु वे शीघ्रतासे सम्हल गये । अपनी हालत छिपानेके लिये उन्होंने अपना मुख रूमालसे ढक लिया और वे अपने नियत कार्यको करनेके लिये नीचे भंडारगृहमें चले गये ।

२१—समुद्र-यात्रा ।

जो जहाज सुरेशको कलकत्तेसे इँग्लैण्ड लेगया था, वह एक मामूली पसेंजर स्टीमर था । उसमें अधिकांश गोरे लोग ही भरे हुए थे । यहाँ तक कि कुछ ओछे जातिके मुसलमानोंको छोड़कर सब नाविक भी अँगरेज ही थे । सभी गोरे नाविक सुरेशकी पदवीको देखकर जलते थे । परन्तु कप्तान साहबके डरसे कोई उनका बाल भी बाँका न कर सकता था । सुरेशसे कोई बोलता नहीं था, इसलिये उन्हें यह एकान्त जीवन बहुत बुरा लगता था । लेकिन यह हालत बहुत दिनों तक नहीं रही । यदि किसी मुसाफिरको किसी वस्तुकी आवश्यकता होती तो उसे भंडारीके ही पास जाना पड़ता था । सुरेशको इससे बहुत लाभ हुआ । जहाज़के लगभग सभी लोग सुरेशके कार्य्य तथा आचरणसे प्रसन्न होकर धीरे धीरे उनसे प्रेम करने लगे । जहाजमें बहुतसी स्त्रियाँ उनको अपने पास बुलाकर उनसे तरह तरहकी बातें सुना करती थीं । थोड़े दिनोंके बाद उनको नाविक भी चाहने लगे । इन्हीं सब कारणोंसे सुरेशकी समुद्र-यात्रा अच्छी तरह कट गई । तेंतीसवें दिन जहाज सही सलामत लन्दन पहुँच गया । सब मुसाफिर बड़ी उत्सुकतासे अपने अपने घरको जाने लगे ।

२२—लन्दनमें सुरेश।

जब कि सब मुसाफिर आनन्दसहित, डेकपर आये हुए कुटुम्बियोंसे मिल रहे थे, और धीरे धीरे अपने अपने घरोंको जा रहे थे, सुरेश जहाजपर खड़े खड़े अपने घरवालोंका ध्यान करके अत्यन्त दुखी हो रहे थे। उनके ध्यानमें नाथपुरका दृश्य बार बार आ रहा था। उनके हृदयमें अपनी माताके दर्शन करनेकी लालसा हो रही थी। कप्तान साहब तथा नाविक अपने अपने कामोंमें लगे थे, इसलिये किसीको यह मालूम न था कि सुरेश कहाँ हैं, और क्या कर रहे हैं। चारों ओर आनन्द ही आनन्द दीख पड़ता था, परन्तु ध्यानमग्न दुखी सुरेश मस्तूलके सहारे खड़े हुए अश्रुधारा बहा रहे थे। अकस्मात् एक युवतीने पीछेसे आ सुरेशके कंधे पर हाथ रखकर उनकी ध्याननिद्राको भंग कर दिया। यह युवती अविवाहिता थी। भारतवर्षमें वर प्राप्त करनेकी आशासे ही आई थी, परन्तु आशा सफल न होनेके कारण उसे अपने घर वापिस जाना पड़ा था। एक ही जहाजपर यात्रा करनेके कारण उससे तथा सुरेशसे भली भाँति जान पहिचान हो गई थी। जहाजके अन्य मुसाफिरोंकी भाँति वह भी अपने मातापिताके घर जा रही थी, और इसी कारण सुरेशसे अन्तिम भेंट करनेके लिये उनके पास आई थी। उसके रंग ढंगसे यही प्रतीत होता था कि वह सुरेशको चाहती है। जब जहाजके मुसाफिर अपने अपने घरको चले गये और भम्भड़ कुछ कम हुआ तो कप्तानने सुरेशको बुलाया और उनसे पूँछा—"अब तुम क्या करना चाहते हो? जहाजकी ही नौकरीमें रहोगे या लन्दनमें रहकर विद्याभ्यास करोगे?" सुरेशने कहा—"मैंने अभी तक इस बातका निश्चय नहीं किया कि मुझे कौनसा कार्य्य लाभकारी होगा, क्योंकि मुझे इस अपरिचित देशमें आये हुए अभी केवल दो ही घंटे हुए हैं। इसके अतिरिक्त यहाँके निवासियों तथा उनकी रीतियोंके विषयमें भी मुझे बिल्कुल ज्ञान नहीं है।"

कप्तानने कहा—"मुझे तो तुमसे केवल इतना ही कहना था कि मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ । मैं सदैव तुम्हारी सहायताके लिये तय्यार रहूँगा । तीन सप्ताह तक मेरा जहाज यहीं रहेगा, और तब तकके लिये तुम्हारे रहने तथा खाने पीनेका इन्तजाम यहीं हो जायगा, परन्तु फिर भी तुम्हें चुपचाप न बैठकर जीविकाके लिये निरन्तर उद्योग करते रहना चाहिये । ऐसा न करनेसे तुमको घोर आपत्तिका सामना करना पड़ेगा । मैं तो केवल यही कहता हूँ कि तुम यहाँ अच्छी तरहसे रहो, और ऐसे सत्कार्य्य करो जिससे तुम्हारा नाम हो ।" इन सब बातोंको सुनकर सुरेश बहुत कृतज्ञ हुए और कप्तान साहबको हृदयसे धन्यवाद देने लगे । जब कप्तान साहब अपने एजेण्टके पास किसी विषयपर सलाह लेनेके लिये चले गये, तो सुरेश भी एक साहबके साथ शहरमें घूमनेके लिये निकले । ऊँचे ऊँचे सुन्दर मकान तथा सुसाज्जित सड़कें देखकर सुरेशको बहुत आश्चर्य्य हुआ । सड़कों परके अपूर्व दृश्यने सुरेशको कुछ देरके लिये 'किंकर्तव्यविमूढ़'सा बना दिया । वे घूमनेके इतने शौकीन हो गये थे कि जहाजपर केवल सोनेके लिये ही आते थे । अब वहाँके बहुतसे लोगोंसे उनकी जान पहिचान भी हो गई थी । जब जहाजके छूटनेका समय आया, तब उन्हें रहनेके लिये स्थानकी आवश्यकता पड़ी । परन्तु इसके लिये उनको कुछ अधिक प्रयत्न न करना पड़ा । उनके एक मित्रने उन्हें एक घरमें ठहरवा दिया । यह घर एक बड़ी गुफाके समान था, और इसमें कितने ही छोटे छोटे कमरे थे । यह घर ऐसी सुनसान जगह पर था कि शहर भरके बदमाश तथा शराबी यहीं रहते थे । उनमें प्रायः सभी युवक ऐसे थे जिन्होंने अपना सर्वस्व मदिराके हाथ बेच दिया था । इस घरमें बहुतसी व्यभिचारिणी युवातियाँ भी रहती थीं । इन युवतियोंने अपने पाउडर लगे मुखोंकी शोभासे सारे युवकोंको कठपुतलियोंकी भाँति अपने वशमें कर

डलिया था। सुरेश इन दुराचारी मूर्तियोंको देखते ही भयभीत हो गये, और दूसरे दिन प्रातःकाल ही वहाँसे चले जानेका निश्चय करने लगे। लगभग आधी रातके समय किसी खटकेके शब्दसे उनकी नींद खुल गई। उस समय अपने सम्मुख एक व्यक्तिको देखकर उन्हें बहुत डर लगा और अत्यन्त आश्चर्य्य भी हुआ। वे सोचने लगे कि इस समय रातके वक्त मेरे पास कौन आया है? क्यों आया है? क्या मेरे रुपये पैसे छीननेके लिये मुझे मारना चाहता है? इसी ढङ्गसे नाना प्रकारके विचार उनके मनमें उत्पन्न हो रहे थे, लेकिन अन्धकारमें उन्हें कुछ भी नहीं दीख पड़ता था। फिर सुरेशने जम्हाई ली। वह मूर्ति न जाने कहाँ बिला गई। सुरेश भी डुपट्टा तान सो रहे। प्रातःकाल होते ही वे नौकरीकी तलाशमें चल दिये, परन्तु वहाँकी रीतियोंसे अपरिचित होनेके कारण शाम तक भटकने पर भी उनको कोई नौकरी न मिली। जिस समय वे अपने स्थानको लौटे थकावट और प्यासके मारे उनकी बहुत बुरी हालत हो रही थी। थोड़ीसी शराब पी लेनेसे शरीरमें कुछ फ़ुर्ती आ जावेगी, यह सोचकर वे शराबकी दूकान पर गये। एक काले आदमीको वहाँ देखकर कितने ही आदमी उनके पास आ खड़े हुए। उस समय वहाँ बीसियों साहब और मेम शराब पी रहे थे। दो युवतियाँ एक जगहपर बैठी हुई सुरापान कर रहीं थीं। सुरेशको देखकर वे उनके पास दौड़ आईं और उनसे बातचीत करने लगीं। उन्होंने सुरेशसे सुरापानके लिये आग्रह किया! सुरेश उनकी आज्ञाका उल्लंघन न कर सके। उनके साथ घरके एक एकान्त स्थानमें बैठकर उन्होंने शराब पीना शुरू किया। शीघ्र ही वह बोतल खतम हो गई। सुरेशने दूसरी बोतलके लिये हुक्म दिया। एक बोतल फिर लाई गई। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उस समय सुरेश नशेमें पागल हो रहे थे। दोनों युवतियोंकी भी यही हालत थी। वे कभी नाचती थीं, कभी गाती थीं,

और कभी चीत्कार करती थीं । अन्तमें एक बोतल शराब लेकर वे दोनों रमणियाँ सुरेशको अपने कमरेमें लिवा ले गईं । इसके बाद क्या हुआ, सुरेशको इसका पता नहीं ! दूसरे दिन दो पहरके समय उनकी आँख खुली । उस समय भी नशा पूरी तरहसे नहीं उतरा था । उनका दिमाग ठिकाने नहीं था । उन्होंने देखा कि दोनों स्त्रियाँ बेहोश और अर्द्धनग्न अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ी हुई हैं । सुरेशका सिर भिन्ना गया था । उनके अधःपतनकी हद हो गई थी !

उन्होंने दोनों युवतियोंको जगानेके लिये उनके अधरचुम्बन किये । इससे उन दोनोंकी निद्रा भङ्ग हो गई । आखें मलती हुई वे उठ बैठीं । फिर शराब मँगाई गई । वह दिन भी उसी तरहसे कटा । फिर नशा उतरा, फिर शराब पी गई । उन्हें इस आपत्तिसे बचानेवाला कोई नहीं था । वे अशिक्षित थे, नवयुवक थे, उनके जीवनका कोई उद्देश्य नहीं था, कुसंगमें वे पड़ गये थे, उनके ऊपर कोई किसी प्रकारका अंकुश नहीं था, विवेक भी उनका जाता रहा था । ऐसी दशामें उनका दुश्चरित्र बन जाना आश्चर्य्यजनक नहीं था । निस्सन्देह उनकी यह दुश्चरित्रता अत्यन्त निन्दनीय थी । अच्छा होता यदि वे इन दुष्कर्मोंमें न फँसते और उनके चरित्र-लेखकको ये घृणोत्पादक बातें न लिखनी पड़तीं । चरित्र-लेखकका काम सत्य सत्य घटनाओंको ज्योंका त्यों लिख देना है । इसी कारण ये बातें छोड़ी नहीं गईं । दूसरोंके दुष्कर्मजनित अधःपतनसे भी हम कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं । परमात्मा करे कि प्रवासी नवयुवक इस प्रकार चरित्रभ्रष्ट कभी न हों ।

सुरेशके चरित्रहीन होनेका फल यह हुआ कि वे थोड़े दिनोंमें ही गाँठके सब रुपये खो बैठे । फिर क्या था—" पैसा रहा न पास यार मुखसे नहिं बोलें । " दोनों स्त्रियाँ जो सुरेशके पीछे पीछे फिरती थीं, अब न जाने कहाँ चली गईं । निर्धन

और निस्सहाय सुरेश इधर उधर मारे मारे फिरने लगे। इसी बात पर विचार करनेके लिये एक दिन वे पासके एक बागमें जा बैठे। अचानक नींदने आघेरा और वे तिपाईके सहारे सो गये। बहुत देर नहीं हुई थी कि समाचारपत्र बेचनेवाले एक बालकने बड़े जोरसे चिल्लाकर उनकी नींद उचटा दी। सुरेशको इस बर्तावसे बहुत क्रोध हुआ; परन्तु उस बालकने उनके रोषकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर उनसे उनका नाम ग्राम तथा वहाँ आनेका कारण बड़ी नम्रतापूर्वक पूँछा। सुरेशका सारा क्रोध जाता रहा। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपनी 'रामकहानी" सुनाई। उस बालकको उनकी दशा पर तरस आ गया। जब वह बालक अपने घरको वापिस गया तो उसने अपने मालिकसे सुरेशको अपने समान नौकरी देनेका आग्रह किया। दैवयोगसे मालिकने उस बालककी बात मान ली, और सुरेशको अखवार बेचनेपर नौकर रख लिया। परन्तु सुरेश वहाँ थोड़े दिन ही रह सके। उनकी तबियत इस छोटे कामको करते करते उकता गई थी। इसी कारण उन्होंने एक दूसरी जगहपर नौकरी कर ली। परन्तु "उत्तर जाओ चाहे दक्षिण, वही करमके लक्षण" इस कहावतके अनुसार सुरेश वहाँ भी अधिक दिन न टिक सके। उन्होंने खर्चके लिये घरको भी लिखा पढ़ी की थी, लेकिन वहाँसे भी कोरा जवाब मिल गया था। अब उनकी दशा बड़ी शोचनीय थी। अन्तमें वे एक ऐसे स्थानपर गये जहाँ बहुतसे मध्यम श्रेणीके लोग रहते थे। थोड़े दिन तक सुरेश उसी स्थान पर रहे। उनके एक मित्रने उस समय उन्हें अपने घरपर ठहरा लिया था। उनके किस्से सुनकर वहाँके सब रहनेवाले उनसे प्रेम करते थे। एक दिन जब वे रातको अपने कमरेमें बैठे पढ़ रहे थे कि अकस्मात् वहाँ किसीके आनेका खटका हुआ। वे चौंक पड़े, देखा तो अपने कमरेमें मिसेज ऐल—को पाया। मिसेज ऐल—वहींके निवासियोंमेंसे थीं। उनकी

उम्र सुरेशसे बहुत ज्याद: थी । उनके पति बढ़ईगीरीका काम करते थे, और वे उस रातको कहीं बाहर गये हुए थे । आधी रातको आनेका कारण यही था कि वह युवती सुरेश पर आशक्त हो गई थी । सुरेशने उसको बार बार बहुत समझाया तथा आगा पीछा सुझाया, पर उस स्त्रीपर उनकी बातोंका कुछ भी अवसर न पड़ा, और वह उनसे बराबर आग्रह करती रही । अन्तमें जब उनके मित्रने पूँछा—" मित्र, क्या तुम अभी तक नहीं सोये ? " तब तो उस स्त्रीके हृदयमें भय उत्पन्न हुआ । वह यह कहती हुई अपने कमरेमें चली गई—" सुरेश, मैं सिर्फ़ तुम्हारे प्रेमकी भीख माँगती हूँ । इसके लिये अगर मुझे पति, बाल-बच्चे और घरकी तो बात क्या, प्राण भी त्यागने पड़ें तो मैं उन्हें भी सहर्ष त्याग दूँगी । "

सुरेशने उस स्त्रीसे पीछा छुड़ानेके लिये वह निवासस्थान ही नहीं, बल्कि लन्दन नगरको भी कुछ दिनोंके लिये छोड़ देनेका विचार किया । उनके पास उस समय थोड़ेसे रुपये और बाकी थे । इसलिये उन्होंने बिसाती बनकर ग्रामों तथा कस्बोंमें भ्रमण करनेका पक्का इरादा कर लिया । वे एक दूकानसे कुछ चीजें खरीद लाये, और जानेकी तैय्यारी करने लगे ।

२३—भाग्योदय ।

सुरेश अब बिसातियोंके भेषमें गाँव गाँवमें चक्कर लगाते थे । एक मासमें उन्हें लगभग दो पौण्ड (तीस रुपये) का लाभ होने लगा । इससे उन्होंने यही कार्य्य कुछ दिन और करनेका निश्चय कर लिया । वे प्राय: एक दो सप्ताह बाद सामान लेनेके लिये लन्दन आया करते थे, लेकिन वे आते इस तरहसे थे कि मिसेज़ ऐलको उनके आनेकी ख़बर न लगे । ग्रामवाले सुरेशकी चीजें ही मोल न लेते थे, बल्कि उनका बहुत कुछ आदर भी करते थे । इस प्रकार सुरेशने पाँच ही

महीनेके भीतर लगभग डेढ़सौ रुपये कमा लिये । यद्यपि वे बिसातीका ही काम किया करते थे तथापि पढ़ने तथा व्यायामके अभ्यासोंको उन्होंने कभी न छोड़ा, दिन दिन बढ़ाते ही गये । इसका फल यह हुआ कि वे मामूली शिक्षित व्यक्तिके अतिरिक्त एक अच्छे पहलवान भी हो गये । उनको विज्ञान, ज्योतिष, गणित तथा वैद्यककी पुस्तकोंके पढ़नेका बड़ा शौक था । इसके अतिरिक्त उन्होंने मिश्र देशकी भाषाओंकी भी कई पुस्तकें पढ़ डालीं। वे अब भी बिसातियोंके भेषमें गाँव गाँवमें फिरा करते थे । एक दिन जब वे केण्ट नामक ग्राममें थे, उनको किसीसे मालूम हुआ कि वहाँ एक सर्कसवाले आये हैं । भाँति भाँतिके व्यायाम जाननेके कारण उनके हृदयमें बिसातीका काम छोड़कर सर्कसका काम करनेकी इच्छा हो उठी । वे तुरन्त उस सरायमें जा पहुँचे जहाँ वह सर्कस-मंडली ठहरी हुई थी । उस कम्पनीके मेनेजर भी वहीं बैठे मिल गये । सुरेशने उनसे नौकरीके लिये प्रार्थना करते हुए कहा—" अगर आप मुझे अपने सर्कस दलमें रख लें तो मैं उसमें कुश्ती, जिमनाष्टिक इत्यादिके खेल दिखा सकूँगा । " सुरेश देखनेमें बहुत बलवान् नहीं मालूम होते थे । कदके वे छोटे थे, मोटे ताजे भी नहीं थे, लेकिन उनकी हड्डियाँ बड़ी मजबूत थीं । बाल्यकालसे ही वे व्यायाम करनेमें बड़े कुशल थे । कलकत्तेमें अनेक बार जिमनाष्टिक और कुश्तीके खेल उन्होंने दिखलाये थे । उनके शरीरमें बहुत बल था, लेकिन मेनेजर साहबने उनकी आकृतिको देखकर यही समझा कि इनमें बल नहीं है । सुरेशकी बातोंसे वे कुछ मुस्कराये, और यह सोचकर कि, चलो थोड़ी देरके लिये हँसी मजाक ही रहेगा, उन्होंने अपने दलके सबसे मजबूत पहलवानको बुलवाया । उसके आनेपर मेनेजरने सुरेशसे कहा—" कहो, कहो, इसके साथ लड़ सकोगे ? " सुरेशने कहा—" हाँ, कुश्ती करा दीजिये । " कुश्ती शुरू हुई । एक ओर तो वह दीर्घकाय

पहलवान था और दूसरी ओर छोटेसे कदके सुरेश । लेकिन थोड़ी देर-मेंही दर्शकोंको यह पता लग गया कि यद्यपि साहबमें बल बहुत है लेकिन तो भी दावपेचमें वह काले आदमी भारतवासीके समान नहीं है । दस मिनटके भीतर ही वह साहब पराजित हो गया । सुरेशने उस समय मेनेजरसे कहा—" यदि आज्ञा हो तो होरीजंटल और पैरैलैल बार पर कुछ जिमनाष्टिकके खेल करके दिखलाऊँ ? " मेनेजरने कहा—" नहीं, रहने दो । मैं तुम्हारे कामसे सन्तुष्ट हूँ । तुम हमारे सर्कस दलमें रह सकते हो । "

उसी दिनसे सुरेश उस सर्कस दलमें शामिल कर लिये गये । वेतनका भी बन्दोबस्त हो गया । भोजन इत्यादिके व्ययके सिवाय उन्हें १५ शिलिङ्ग प्रति सप्ताहके हिसाबसे मिलते थे । यद्यपि सर्कसके अन्य आद-मियोंके वेतनकी अपेक्षा सुरेशका वेतन बहुत कम था, लेकिन सुरेशने उसे स्वीकृत कर लिया । सुरेश जानते थे कि काम सीख जानेपर अवश्य ही उनके वेतनमें वृद्धि हो जायगी । इधर सुरेश १५ शिलिङ्ग प्रति-सप्ताह पानेसे प्रसन्न थे और उधर मेनेजर साहबको भी इस बातसे बड़ी प्रसन्नता थी कि इतने कम वेतनपर उन्हें एक अच्छा खिलाड़ी मिल गया । उन्हें अपने सर्कसका विज्ञापन देनेमें बड़ा सुभीता होगया, सैक-ड़ों ही आदमी सर्कसमें इसलिये आते थे कि उसमें एक काला आदमी हिन्दुस्तानी भी खेल दिखलाता था । जिस रात्रिको सुरेशने अपना प्रथम खेल दिखलाया था उसका भी कुछ वृत्तान्त सुन लीजिये । मेनेजरने विज्ञापन दिया था—" आज रातको एक हिन्दुस्तानी युवक अपने अद्भुत खेल दिखलावेगा । " यह समाचार सुनते ही शहरके बहुतसे स्त्री पुरुष उस रात्रिको सर्कस देखनेके लिये पहुँचे । सर्कसकी रंग बिरंगी पोषाक पहिने हुए सुरेश दर्शक लोगोंके सामने आये । दर्शकमंडलीके सामने प्रथम ही प्रथम आते समय अभिनेताओंकी जो हालत होती है उसे बत-

लानेकी आवश्यकता नहीं । सुरेशके हाथ पाँव काँपने लगे, उन्हें अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दीख पड़ने लगा । किन्तु थोड़ी देरमें ही दर्शकोंकी करतलध्वनिने उनको सचेत कर दिया । उनके खेलमें पद् पद् पर तालियाँ बजती थीं और लोग वाह वाह कहते थे । उस दिन सुरेशने इतने अद्भुत कौशलके साथ खेल दिखलाये कि उन्हे स्वयं ही अपनी सफलता पर आश्चर्य्य हुआ । खेल समाप्त करके और खूब प्रशंसा प्राप्त करके वे सर्कसके भीतरी भागको वापिस चले गये । मेनेजर साहबने आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे हाथ मिलाया । अन्यान्य खिलाड़ियोंने भी उनकी बहुत तारीफ की ।

इसके बाद उन्होंने इंग्लैण्डके अनेक शहरोंमें अपने खेल दिखलाये । सर्कस-क्रीड़ाओं द्वारा ख्याति प्राप्त करना ही उनके जीवनका उद्देश हो गया । दिनके अधिकांश भागमें वे अपने व्यवसाय-सम्बधी कौशलको बढ़ानेकी चेष्टा किया करते थे । ज्यों ज्यों उनका क्रीड़ा-कौशल बढ़ता गया त्यों त्यों उनकी ख्याति भी दूर दूरतक फैलती गई । होते होते वे " हिन्दुस्तानी सर्कसवाला " के नामसे मशहूर हो गये ।

सर्कस दलमें प्रवेश करनेपर जब कभी उन्हें अवकाश मिलता तो वे उसे नानाप्रकारकी पुस्तकोंको पढ़नेमें व्यतीत करते थे । लेकिन सर्कसके कितने ही खिलाड़ी उनके पढ़नेको नापसंद करते थे । खास करके कुछ लड़कियाँ तो ऐसी थीं जो सुरेशके कार्य्यमें बहुत विघ्न डालती थीं । उनको पढ़ते हुए देखकर उनके पास आजातीं, खुद खूब हँसती और उन्हें हँसाती थीं । सर्कस दलके अनेक युवक युवतियोंके जीवनका उद्देश्य ही आमोद-प्रमोदमें मग्न रहना था । सुरेश किसी न किसी तरहसे अपना पिंड छुड़ाकर थोड़ा बहुत समय पढ़ने लिखनेमें अवश्य बिताते थे । इस प्रकार सुरेश अपने दिन व्यतीत कर रहे थे । इस सर्कस दलके साथ वे इंग्लैण्डके बहुतसे शहरोंमें घूम चुके थे, लेकिन स्वदेशको

उन्होंने बिल्कुल ही भुला नहीं दिया था, अपने घरवालोंकी याद वे कभी कभी अवश्य किया करते थे। वे बराबर नियमित रूपसे अपने काकाको पत्र भेजा करते थे। जहाँ जहाँ जाते, जो कुछ करते, जिस तरह रहते, इन सब बातोंका हाल वे लिखा करते थे । अपनी प्यारी माताके लिये उनका हृदय बराबर व्यथित रहता था । प्रत्येक पत्रमें वे माँको प्रणाम लिखते थे—पत्रका अधिकांश भाग माँकी बातोंसे ही भरा रहता था। कभी भारतवर्षको लौटनेके लिये उनकी प्रबल इच्छा होती थी, कभी घरवालोंके दर्शनके लिये वे उत्सुक होते और कभी माताका स्मरण करके उनका हृदय व्याकुल हो जाता। उनके उस समयके भाव उनकी चिट्ठियोंसे ज्ञात हो सकते हैं । उनके कई पत्रोंका अनुवाद हमने परिशिष्टमें दे दिया है।

सुरेश वहाँ चैनसे रहते थे । उनके मार्गमें यदि कोई बाधा थी तो वह उसी मंडलीकी एक १८ वर्षकी एक युवती थी। यद्यपि वह नाटक-मंडलीमें काम करती थी, तथापि वह एक भले घरानेकी थी, पढ़ी लिखी थी, और मंडलीमें उसका काम तनी रस्सी पर नाचना ही था। जातिकी वह जर्मन थी। वहाँ उसके कई प्रेमी थे, लेकिन वह सुरेशके अरिरिक्त और किसीको नहीं चाहती थी । जब कभी दोनों अकेलेमें मिलते तो बहुधा वह सुरेशके साथ छेड़खानी किया करती थी । फिर भी वह युवती सुरेशकी दशा देखकर उन्हें पढ़नेके लिये उत्साहित ही करती थी। सुरेश उस युवतीके प्रेम-बन्धनसे बचनेके लिये बहुत प्रयत्न करते थे, लेकिन यह बात अत्यन्त कठिन थी । जब कभी उनके पढ़ते समय वह युवती उनके पास आ पहुँचती तो उनकी आकृति तथा बातचीतसे यह प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगता था कि वे भी उस युवतीसे कुछ न कुछ प्रेम करते ही हैं । इस प्रकार ये दोनों जीव बहुत सुखपूर्वक रहते थे। मंडलीके किसी व्यक्तिको इन दोनोंकी बातें मालूम नहीं थीं,

इसलिये कोई इनसे ईर्ष्या भी न करता था। एक दिन सुरेश कुछ वस्तुयें खरीद लाये। ये चीजें एक जर्मन समाचारपत्रमें लिपटी हुई थीं। जब वे अपने कमरेमें आये तो वहाँ उस युवतीके अतिरिक्त और कोई न था। उस युवतीने बड़ी उत्सुकताके साथ उन चीजोंको खोल डाला। अकस्मात् उसकी दृष्टि लिपटे हुए समाचारपत्रके एक खानेपर पड़ी। पत्र मातृभाषामें होनेके कारण उसने 'सूचना' वाले कालमको पढ़ना आरम्भ किया। इस कालममें एक 'सूचना' इसी भटकती हुई युवतीको घर लौटानेके लिये प्रकाशित की गई थी, क्योंकि उस लड़कीका पिता बहुत बीमार था। उसके हाथसे पत्र गिर पड़ा, और आँखोंसे अश्रुधारा वह चली। सुरेश उस समय दूसरी ओर देख रहे थे। ज्योंही उनकी दृष्टि फिरी, उन्होंने उस युवतीको रोते पाया। पास आकर उन्होंने उसके दोनों हाथ अपने हाथोंमें लेलिये, और धीमे स्वरसे उसके रोनेका कारण पूँछा। सुरेशका उससे इस प्रकार मिलने तथा बोलनेका प्रथम ही अवसर था। उस युवतीसे भी न रहा गया। उसने उनके गलेमें हाथ डाल कर और भी जोरसे रोना शुरू किया। सुरेश बड़े चक्करमें थे कि मामला क्या है! तब उस लड़कीने उस समाचारपत्रके टुकड़ेको सुरेशको दिखलाया। सुरेश फ्रेञ्च तथा जर्मन भाषा जानते थे, अतएव उन्होंने युवतीके रोनेका कारण उसके पढ़ते ही जान लिया। सुरेशने फिर पूँछा— "तो फिर तुम इतनी रोती क्यों हो?" इसके उत्तरमें उस युवतीने केवल यही कहा—"क्या तुम यह भी नहीं बूझ सकते?" वह लड़की एक कुलीन घरानेकी थी, और १४ वर्षकी अवस्थासे ही घर छोड़कर बाहर निकल पड़ी थी। माता पिताकी एकलौती पुत्री थी। उसकी माताकी मृत्यु घर छोड़नेके पहिले ही हो चुकी थी, और अब उसका पिता भी मृत्युशय्या पर पड़ा था।

अतएव उसने मेनेजरसे छुट्टी लेकर सुरेशके साथ लन्दनकी ओर प्रस्थान किया। लन्दनसे वह लड़की एक डच जहाजमें सवार होकर घरकी ओर रवाना हुई। विदा होते समय उसने सुरेशसे अपने हृदयका हाल स्पष्टतया कह दिया। सुरेशने सजलनयन होकर नम्रतापूर्वक यही उत्तर दिया—"तुममें और मुझमें आकाश पाताल कैसा भेद है। मेरे विवाहकी कुछ सम्भावना नहीं है। तुम मुझको बिल्कुल भूल जाओ, और यदि हो सका तो मैं भी तुमको भूलनेकी चेष्टा करूँगा।"

सुरेशने केवल नटविद्या तथा जिमनाष्टिकमें ही नाम न कमाया, बल्कि जंगली जानवरोंके पालनेमें तथा उन्हें भाँति भाँतिके काम सिखानेमें भी वे प्रसिद्ध हो गये। आफ्रिकाके बड़े बड़े भयंकर सिंहोंको वे कुत्तोंकी तरह अपने वशमें कर लेते थे। उनके पिंजड़ेमें घुसकर उनके साथ तरह तरहके खेल करते थे। जिस समय वे सर्कस दलके साथ विलायतके भिन्न भिन्न शहरोंमें घूम रहे थे, सौभाग्यसे एक दिन प्रोफेसर जामरक साहबसे उनकी भेंट हो गई। जंगली जानवरोंके पालनेमें जामरक साहबकी बराबरीका दूसरा कोई नहीं था। हिंसक पशुओंके स्वभाव जाननेके लिये इन्होंने अनेक देशोंके वनोंमें निवास किया था। हिन्दुस्तानमें भी ये आये थे और व्याघ्र हाथी तथा रीछोंके स्वभावका उन्होंने अध्ययन किया था। यूरोपमें उस समय पशुओंके वश करनेमें उनके समान कोई नहीं था। सुरेशके साहस, तीक्ष्ण बुद्धि और मानसिक बलको देखकर प्रोफेसर जामरक साहब बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सुरेशको अपने यहाँ नौकर रखनेकी इच्छा प्रकट की। सुरेश भी यही चाहते थे। इतने दिन बाद सुरेशके अच्छे दिन आये थे। जामरक साहबके प्रस्तावको उन्होंने सहर्ष स्वीकृत कर लिया। सर्कसको छोड़कर वे उनकी पशुशालामें नौकर हो गये। दो वर्ष तक वे वहाँ रहे। फिर सर्कसमें लौटकर व्याघ्र, सिंह इत्यादिके साथ खेल दिखाने

लगे। इस सर्कस-मंडलीके साथ वे तमाम यूरोपमें घूमे। सन् १८८२ ई० में उन्होंने लन्दनके 'रायल ऐग्रीकलचरेल भवन' में महा प्रदर्शिनीके समय अपने खेल दिखलाये और इस प्रकार जगद्व्यापी कीर्ति प्राप्त की। इसी समय उन्हें बहुतसे पदक और सर्टिफिकट मिले। इस पुस्तकमें उनका विशेष उल्लेख करनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

सर्कस दलके साथ घूमते घूमते वे एक बार हेमबर्ग नगरमें पहुँचे। इस जगहके गाजेनबेक नामक एक सज्जनके एक बड़ी भारी पशुशाला थी। ये महाशय भी जंगली जानवरोंको शिक्षा देनेमें बड़े निपुण थे। सुरेशके खेलोंको देखकर ये बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अधिक वेतन देकर अपने यहाँ नौकर रख लिया। इस पशुशालामें सुरेश सिंह, व्याघ्र, रीछ और हाथी इत्यादिको तरह तरहके खेल सिखाने लगे। यहाँके सिंह उनके हाथको चाटते थे और सुरेश उनके मुँहके भीतर अपना सिर घुसेड़ देते थे! एक व्याघ्रके बच्चेको इन्होंने इतना हिला लिया था कि वह सुरेशके पीछे पीछे कुत्तेकी तरह डोलता था। इसका नाम उन्होंने फैनी रक्खा था। इसी प्रकार एक हाथीको उन्होंने बहुतसी बातें सिखलाई थीं। सुरेशके खिलानेसे ही यह खाता था। जोग कार्ल नामक एक पशु-व्यवसायीने इस हाथीको खरीद लिया। यह बच्चा सुरेशसे इतना हिला हुआ था कि उसने मिस्टर कार्लके यहाँ पहुँचकर दो तीन दिन तक कुछ न खाया। इसलिये उन महाशयने लाचार होकर सुरेशको नौकर रख लिया। यहाँपर भी सुरेशको खूब यश प्राप्त हुआ। उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधर गई। अब वे एक धनी मानी सज्जनकी तरह रहने लगे।

२४—प्रेम-कथा ।

संसारमें ऐसा कोई विरला ही होगा जिसके जीवनमें प्रेमकी एक न एक घटना न हुई हो । यदि कोई ऐसे हो सकते थे तो वे भारत-वर्षके ऋषि मुनि ही थे जो बाल्यावस्थासे ही योगाभ्यासमें लग जाते थे। साधारण मनुष्योंके लिये जितेन्द्रिय होना अत्यन्त कठिन है । कामिनीके कमनीय रूपसे आकृष्ट न होनेवाले पुरुष इस संसारमें बहुत कम हैं ।

यह तो हम पहले ही लिख चुके हैं कि सर्कसकी एक जर्मन बालि-काने उनके हृदयको आकृष्ट और मुग्ध कर लिया था, लेकिन सुरेश अपने मनमें जानते थे कि इस रमणीके साथ उनका विवाह होना अस-म्भव है, इसलिये वे अपने हृदयको दमन करते थे । जब वह युवती सर्कसको छोड़कर अपने घर चली गई थी तो वहाँसे वह सुरेशके पास कभी कभी पत्र भेजती थी । लेकिन सुरेशने उसके पत्रोंका उत्तर न देना ही ठीक समझा ।

जब सुरेश सर्कस दलके साथ जर्मनीके एक नगरमें पहुँचे तो घूमते घूमते वहाँ एक दूकान पर उनकी उसी जर्मन युवतीसे भेंट होगई । बहुत दिनोंसे दोनोंने एक दूसरेको नहीं देखा था, इसलिये दोनों ही इस घट-नासे बड़े आश्चर्य्यमें पड़ गये । कुछ देर तक दोनों चुप रहे, फिर हाथमें हाथ डालकर वे उस दूकानसे निकले । पासके बागके एक निर्जन स्थानमें एक बैंचपर बैठकर वे बहुत देर तक बातचीत करते रहे । फिर प्रेमालिङ्गन करके वहाँसे विदा हुए । इसके बाद वे प्रायः लुक छिपकर एक दूसरेसे मिला करते थे। वह युवती एक धनाढ्य व्यक्ति-की कन्या थी । माता पिता न होनेसे वह विपुल ऐश्वर्य्यकी अधिकारिणी थी । इसलिये उसके साथ विवाह करनेके लिये बहुतसे माननीय सज्जन चिन्तित थे । ऐसी दशामें एक अज्ञात कुलशील अपरिचित काले

आदमीके साथ उसका विवाह होनेकी कुछ सम्भावना नहीं थी। युवतीके सम्बन्धी बराबर यही चेष्टा करते थे । पर भला प्रेमकी तरङ्गोंको कौन रोक सकता है ! किसी न किसी तरहसे वह लुक-छिपकर सुरेशसे मिला करती थी। यह बात बहुत दिन तक छिपी नहीं रह सकी । जब उस युवतीके घरवालोंने ये बातें सुनीं तो उन्होंने क्रोधान्ध होकर सुरेशको जानसे मार डालनेका निश्चय कर लिया । अब सुरेशका जर्मनीमें रहना निरापद नहीं था, इसलिये उन्हें प्राणरक्षाके लिये किसी अन्य देशको जानेकी सूझी। इसी कारण सुरेशने अटलांटिक महासागरको पार करके सुदूर अमरीका जानेका विचार किया। सौभाग्यसे उन दिनों "वूम्बैल्स रायल मेनेजरी" नामक सर्कस-दल अमरीका जारहा था। सुरेशने इसीके साथ अमरीकाके लिये प्रस्थान किया।

२५-ब्रेजिलमें सुरेश ।

सन १८८५ ई० में सुरेशने वूम्बैल साहबकी सुविख्यात हिंस्र-पशु-प्रदर्शनीके दलमें नौकरी कर ली थी। इसी वर्ष अमरीका पहुँच कर उन्होंने भिन्न भिन्न नगरोंमें अपने खेल दिखलाना शुरू किया। युनाइटेड स्टेट्सके सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानोंमें उन्होंने अपनी क्रीड़ाएँ प्रदर्शित कीं। सर्वत्र ही उनकी बड़ी प्रशंसा हुई। बड़े बड़े समाचार-पत्रोंमें उनके चित्र प्रकाशित होने लगे । यूनाइटेड स्टेट्ससे वे सर्कस-दलके साथ मैक्सिको पहुँचे, और फिर वहाँसे दक्षिण अमरीकाके विस्तृत साम्राज्य ब्रेजिलमें आये। ब्रेजिल-साम्राज्य प्रायः भारतवर्षके ही समान बड़ा है। दक्षिण अमरीकाका समस्त मध्यभाग इसी साम्राज्यमें शामिल है। सबसे पहिले यहाँ स्पेन और पुर्तगालवालोंने आकर अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। उन्होंने यहाँके आदिम निवासियोंकी स्त्रियोंके साथ विवाह किये थे, इसीलिये एक वर्णसंकर जाति बनी जो आज क्रियोगके

नामसे प्रसिद्ध है । इस समय ब्रेजिलके अधिवासियोंमें क्रियोग लोगोंकी संख्या ही सबसे ज्याद: है । इनके सिवाय पुर्तवालवालों और काफिर लोगोंके मेलसे जो दूसरी वर्णसंकर जाति बनी वह मुलाटो कहलाती है । ब्रेजिलकी राजधानी, 'रायो डि जैनिरो' है । यह नगर अटलांटिक महासागरके तीर पर स्थित है । इसकी जन-संख्या साढ़े तीन लाखसे अधिक नहीं है । इसी नगरमें आकर सुरेशने अपने अद्भुत खेल दिख-लाये । उस वक्त ये केवल सर्कसमें ही काम करते हों सो बात नहीं थी । 'ला क्रनिको' नामक एक प्रसिद्ध समाचारपत्रसे पता लगता है कि उस समय सुरेश भिन्न भिन्न विषयोंपर वक्तृता भी देते थे । वे सिर्फ अँगरेजीमें ही वक्तृता नहीं दे सकते थे, बल्कि ब्रेजिलकी राजभाषा पुर्त-गीज जबानमें भी लैक्चर देते थे । उस वक्त वे अँग्रेजी, जर्मन, स्पेनिश, फ्रैञ्च, पुर्तगीज, इटैलियन, डैनिश और डच इतनी भाषाओंमें बातचीत कर सकते थे । यद्यपि हमारे कुछ पाठकोंको यह बात अत्यन्त आ-श्चर्यजनक मालूम होगी, लेकिन हमारी समझमें इसमें अचम्भेकी कोई बात नहीं । निरन्तर अभ्यास करनेसे मनुष्य क्या नहीं बन सकता ? यदि किसीके हृदयमें साहस हो और प्रबल इच्छा हो तो वह विघ्न-बाधाओंको दूर करता हुआ अपने कार्य्यमें अवश्य सफल होता है । शिक्षा-प्राप्तिका कोई विशेष समय नहीं है, मनुष्य बहुत उम्रके होनेपर भी बहुत कुछ शिक्षा चाहे जब प्राप्त कर सकता है । सुरेश विश्वासके जीवनसे यह बात हम सीख सकते हैं ।

सन् १८८५ ई० में सुरेश ब्रेजिलकी राजधानीमें पहुँचे थे । यहाँकी प्राकृतिक शोभाको देखकर वे मुग्ध हो गये । इसी कारण उन्होंने यहीं पर स्थायी रूपसे रहनेका दृढ़ निश्चय कर लिया । उनकी इस अभि-लाषाके पूर्ण होनेका एक अवसर भी मिल गया । उस समय ब्रेजिल देशकी राजकीय पशुशालाके लिये एक परिदर्शक और रक्षककी

आवश्यकता थी । इस पदके लिये सुरेशने एक अर्जी ब्रेजिलके उच्च पदाधिकारियोंके पास भेज दी । यह अर्जी मंजूर हो गई और सुरेश इस पद पर नियुक्त कर दिये गये । इस प्रकार सुरेश सर्कस-दलके खिलाड़ीसे पशुशालाके सुपरिण्टेण्डेण्ट हो गये ।

यह हम पहिले ही बतला चुके हैं कि यद्यपि सुरेशका कार्य्य हिंसक पशुओंको पालना था, लेकिन तो भी वे समय निकाल कर प्रायः कुछ न कुछ पढ़ा करते थे । वस्तुतः इस अध्ययनमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था । वे कुछ कुछ चिकित्सा शास्त्र सीख गये थे, गणित इत्यादि विज्ञानोंमें उनकी कुछ कुछ गति हो गई थी, दर्शनशास्त्र तथा गुप्त विद्याओंसे उन्हें बड़ा प्रेम था और इनके सिवाय वे कुछ प्राचीन भाषाओंके साहित्यका भी अनुशीलन करते थे । उनकी तत्कालीन स्थितिकी कुछ कुछ झलक उनके पत्रोंमें पाई जाती है । इन्हीं सब बातोंका वर्णन वे अपनी आत्मजीवनीमें लिख रहे थे । लेकिन परमात्माने उनके इस प्रयत्नको पूर्ण नहीं होने दिया ।

अकस्मात् सुरेशकी भेंट एक स्थानीय चिकित्सिककी कन्यासे हो गई । प्रथम दर्शनसे ही सुरेशके हृदयमें उसके प्रति प्रेमका संचार हो गया । लेकिन उस रमणीका हृदय अभी सुरेशके प्रति आकृष्ट नहीं हुआ था । तदनन्तर यथारीति दोनोंका परस्पर परिचय हुआ । अब ये दोनों प्रेमी एक दूसरेसे मार्गमें, बाजारमें, गाड़ीमें अथवा मित्रोंके यहाँ मिला करते थे । क्रम क्रमसे सुरेशका हृदय उसके प्रति अधिक आकृष्ट होने लगा, लेकिन अभी यह रमणी सुरेशके साथ विशेष प्रेम प्रकट नहीं करती थी । स्त्रियोंको साधारणतः कल्पनाबहुल विचित्र जीवनसे अनुराग होता है, इसी कारण सृष्टिके आरम्भसे ही वे वीरताकी पक्षपाती रही हैं । सभी जातियोंके इतिहासमें इस प्रकारके बहुतसे उदाहरण पाये जाते हैं । दूर क्यों जाते हैं, आप उस सर्कसवाली जर्मन

युवतीका ही दृष्टान्त देख लीजिये । अनेक धनी मानी भूम्यधिकारी स्वजातीयोंको छोड़कर वह एक ताम्रवर्ण भारतवासीके साथ विवाह करना चाहती थी !

यद्यपि चिकित्सककी कन्याने पहिले तो सुरेशके प्रति अनुराग प्रकट नहीं किया था, लेकिन फिर वह सिंहपालक सुरेशकी प्रार्थनाको अस्वीकृत नहीं कर सकी । वह प्रणयिनी उनके विचित्रघटनापूर्ण जीवनके प्रति क्रमशः आकृष्ट होने लगी । सुरेशकी निर्भीकता, जीवनको अति सामान्य तिनकेके बराबर समझना, और बिना किसी दुबिधाके सिंह इत्यादि पशुओंके साथ खेलना इत्यादि बातोंको देखकर वह सुरेशके प्राते श्रद्धा करने लगी । धीरे धीरे पारस्परिक घनिष्ठता बढ़ती गई । फिर उस रमणीने अपनी पहिली गम्भीरताको छोड़ना आरम्भ कर दिया । सुरेशका यह नवीन अनुराग उनके लिये कितना लाभदायक हुआ, इसका पता पाठकोंको अगले अध्यायसे लग जावेगा ।

२६—सैनिक सुरेश ।

एक दिन उस चिकित्सक-कन्याने बातचीत करते करते सुरेशसे कहा—"मुझे प्रतीत होता है कि आप सैनिक वेषमें बहुत अच्छे दीखेंगे ।" इस रहस्य-वाक्यका प्रभाव सुरेशके हृदयपर बहुत पड़ा, और उन्होंने अपने मनमें यह संकल्प कर लिया कि अब मैं फौजमें नौकर होकर प्रणयिनीके प्रति अपने प्रेमको प्रमाणित करूँगा । इसी विचारसे वे फौजमें नौकर हुए, लेकिन नौकर होनेपर उन्हें ज्ञात हुआ कि वहाँ कमसे कम तीन वर्षतक रहना पड़ेगा । एक बार जहाँ नियमवद्ध हुए तो फिर देशपर्य्यटन करनेका अवसर मिलना असम्भव था, और सुरेशको घूमनेका बड़ा शौक था । सुरेश सन् १८८७ के प्रारम्भमें ब्रेजिल-सम्राटकी फौजमें मामूली सिपाही बने । उस समय ब्रेजिलमें प्रजातंत्र

राज्य स्थापित नहीं हुआ था । सुरेश अपने सब साथी सिपाहियोंकी अपेक्षा कहीं ज्याद: सुशिक्षित थे । यद्यपि उन्होंने किसी विश्वविद्यालयसे कोई डिग्री नहीं पाई थी, लेकिन तब भी वे अधिकांश डिग्रीधारियोंसे अधिक शिक्षित कहे जा सकते थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। नाना प्रकारके कष्टोंको सहने और भिन्न भिन्न स्थानोंमें घूमनेसे उनका अनुभव बहुत कुछ बढ़ा हुआ था । इतना होनेपर भी उनकी तरक्की बहुत दिनोंतक नहीं हुई । कई वर्ष तक उन्हें एक साधारण घुड़सवारकी तरह रहना पड़ा । वे स्वयं ही घोड़ेकी देखभाल करते थे और स्वयं ही अपने हथियार वगैर: साफ करते थे ।

सन् १८८७ ई० में ही वे सेण्टाक्रूज नामक ग्राममें कारपोरल (जमादार) पदपर काम करते थे । ब्रेजिल-सम्राटके घोड़ोंको चरानेके लिये यहाँ बड़ा भारी वन था । सुरेश इन्हीं घोड़ोंकी देखभाल करते थे । यहाँपर उन्हें कोई परिश्रमका कार्य नहीं था, इसलिये वे बैठे बैठे पढ़ा करते थे ।

कुछ दिनों बाद उनकी बदली सेण्टाक्रूजसे रायो-डि-जैनिरोके सामरिक अस्पतालको हो गई । इस स्थानपर रहकर उन्होंने सर्जरीका (चीरफाड़का) काम अच्छी तरहसे सीखा । वे बड़ी निर्भीकतापूर्वक और बिना किसी दुबिधाके चीरफाड़ कर सकते थे । चिकित्साविद्याके प्रति उनके हृदयमें पहिलेसे ही कुछ अनुराग था, लेकिन अब यह अनुराग बहुत बढ़ गया था । इस समय उन्होंने जो पत्र अपने काका तथा मित्रोंको लिखे थे उनसे यही बात स्पष्टतया प्रकट होती है । उनका चिकित्साशास्त्रसम्बन्धी यह प्रेम उनकी प्रणयिनीको भी अच्छा लगता होगा । क्योंकि वह भी तो आखिर एक चिकित्सककी कन्या थी ।

सुरेशकी तीन वर्षकी शर्त सन् १८८९ में समाप्त होनेवाली थी । अगर वे इस वक्त चाहते तो फौजी नौकरीको छोड़ सकते थे । लेकिन अब उन्हें समर-विभागसे प्रेम हो गया था । यदि सुरेश तीन वर्ष बाद

इस विभागको छोड़ देते तो उन्हें जगद्व्यापी कीर्ति कैसे प्राप्त होती ? परमात्माका ही यह विधान था कि सुरेश ब्रेजिलकी सेनामें उच्च पद प्राप्त करके भारतमाताका मुख उज्ज्वल करें ।

जिस समय सुरेश रायो-डि-जेनिरोके अस्पतालमें काम करते थे, उस समय अमरीकामें पीतज्वरका बड़ा प्रकोप हुआ । इसके सिवाय वहाँ घोर विप्लव भी उपस्थित हो गया था । चारों ओर विद्रोहानल प्रज्वलित हो रही थी । एक ओर पीतज्वरसे पीड़ित आदमियोंकी कातरोक्ति सुनाई पड़ती थी, और दूसरी ओर घायल आदमियोंका आर्त्तनाद । अस्पतालका दृश्य दिन दिन भयंकर होता जाता था । जो लोग अस्पतालमें नौकर थे उनकी अवस्था वर्णनातीत थी । सुरेश इस स्थितिमें रहते हुए भी कभी कर्तव्यविमुख नहीं हुए । वे बड़ी वीरता और साहसके साथ अपना काम करने लगे ।

सार्जेण्ट सुरेश । धीरे धीरे सुरेश कारपोरेलसे प्रथम सार्जेण्ट बना दिये गये । सन् १८९३ ई० तक वे इसी पद पर रहे । उन्होंने स्वयं ही एक बार लिखा था कि "यद्यपि मेरे समान पदवाले सैनिक पुरुषोंको जो कार्य्य सौंपे जाते हैं उनसे कहीं अधिक गुरुतर और महत्त्वपूर्ण काम मुझे दिये जाते हैं, तथापि मेरे कृष्णकाय हिंदुस्तानी होनेकी वजहसे मेरी पदोन्नति–तरक्की–में बड़ी भारी बाधा पड़ती है ।" यद्यपि सुरेशने अनेक वीरोचित कार्य्य किये थे, राज्यकी बहुत कुछ सेवा की थी, सब कामोंमें विशेष यश प्राप्त किया था, और राजकर्म्मचारियोंने भी उनकी तारीफ की थी तो भी वे चार वर्ष तक सार्जेण्ट ही बने रहे । उस समय चारों ओर देशव्यापी विप्लव फैला हुआ था । सुरेशको छोटी मोटी अनेक लड़ाईयोंमें लड़ना पड़ता था । उनके उच्चपदस्थ सैनिक अफसरोंने अधिकारीवर्गसे उनकी सिफारिश भी की थी, लेकिन अभीतक उनकी तरक्की नहीं हुई थी । प्रत्येक युद्धमें उनके असीम

साहसको देखकर सभी चकित होते थे । सुरेशको अभी तक केवल थोड़ेसे ही सैनिकोंके परिचालनका अधिकार था । सुरेशके अधीनस्थ सिपाही तथा साथी उनसे डरते थे और कुछ कह नहीं सकते थे । यह किसे ज्ञात था कि एक काले हिन्दुस्तानी बङ्गाली युवककी सुदूर ब्रेजिल राज्यमें इतनी प्रतिष्ठा होगी ।

लैफ्टीनेण्ट सुरेश । सन् १८९३ ई० में उनको प्रथम लैफ्टीनेण्टका पद मिला । यह पद नितान्त सामान्य नहीं था । यह पद रैजीमेण्टके द्वितीय अधिकारीका था । इस पदके पानेपर वे एक सेनादलके अधि-नायक हो गये । यह पद उन्हें सहजहीमें नहीं मिल गया था । इस विषयमें उन्होंने अपने काकाजीको जो पत्र लिखा था उसका एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है ।

“ प्रिय काकाजी, आप यह न समझें कि जिस पद पर मैं अधिष्ठित हूँ उसे मैंने सहजमें ही प्राप्त कर लिया है । मैंने कभी अपने दिलमें इस बातकी कल्पना भी नहीं की थी कि मैं किसी समय यहाँकी फौजमें अफसर बन सकूँगा । अक्सर मेरी तरक्कीकी बात उठती थी, लेकिन अधिकारी लोग केवल इसी कारणसे कि मैं विदेशी हूँ मेरा नाम सूचीमेंसे काट देते थे । फिर जब विद्रोहाग्नि भड़की, तब मैं और मेरे दूसरे साथी एक जनरलके अधीन काम करते थे । उक्त जनरल साहब यद्यपि मुझसे परिचित नहीं थे, लेकिन युद्धके समयमें जितनी होशियारीके साथ मैंने काम किया, उसपर उन्होंने ख्याल किया था और शत्रुओंके गोलोंकी वर्षामें मैंने जैसे असीम साहससे प्रवेश किया था, उसे भी उन्होंने देखा था । इसके बाद उन्होंने इस बातपर ख्याल करनेकी बिलकुल पर्वाह नहीं की कि मैं देशी हूँ या विदेशी । मेरे कौशलको ही मेरे लिये यथेष्ट सहायक समझकर उन्होंने प्रजातंत्रके सहकारी प्रेसीडे-ण्डके निकट मेरे कार्य्यकी रिपोर्ट की । मैं लैफ्टीनेण्ट पदपर नियुक्त

कर दिया गया और इसी निर्णयात्मक युद्धमें मैंने जो सहायता दी उसे आप जानते ही हैं।"

इसके बाद लैफ्टीनेण्ट सुरेशने लिखा था "इसके साथ ही मैं आपके पास निथेरायके युद्धका एक खाका भेजता हूँ। इसी स्थानपर मेरे साथी मुझसे विशेष डरते थे, यद्यपि मैंने उनके साथ कभी बुरा व्यवहार नहीं किया था। आप सब लोगोंने मुझे लिखा है कि मैं इस युद्धका पूरा पूरा वर्णन आपको लिखूँ, किन्तु काकाजी, युद्धके समान भयंकर वस्तुका क्या वर्णन किया जावे! इसका वर्णन करना ही भयंकर है। युद्धमें जीवन, जो संसारका सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु है, संसारकी सबसे सस्ती चीजकी तरह बिकता है। इसमें जो अपने जीवनकी सबसे कम चिन्ता करता है वही उसकी सबसे अधिक रक्षा कर सकता है। जगतमें साहस क्या चीज है? अपनी इष्ट वस्तुके लिये अविचालित रूपसे और दृढ़प्रतिज्ञ होकर जीवन समर्पण करनेका ही नाम साहस है। जब तक शत्रु दूरपर रहते हैं तब तक विविध विचार और तक वितर्क करके अपनी अकल चलाना बहुत आसान है; लेकिन जब दुश्मन नजदीक और सामने आ जावें तब सिर्फ एक ही उपाय अपने पास रहता है—यानी समग्र सेना इकट्ठी करके आगे बढ़ना। जो जितनी शीघ्रतासे अग्रसर हो सकता है, वह शत्रुओंको उतना ही अधिक आतङ्कित कर सकता है।"

उपर्युक्त बातें वास्तवमें वीरोचित हैं। सच्ची वीरताके विना रणक्षेत्रमें भला दूसरोंको अपना अनुयायी कौन बना सकता है? दूसरोंको मृत्युके मुखमें ले जाना सहज काम नहीं है। अपनी प्रकृतिमें उन्मादिनी शक्ति और प्रभावशाली आत्मत्याग हुए बिना दूसरोंको प्राणसमर्पण करनेके लिये उत्तेजित करना असम्भव है। सुरेशके हृदयमें यह शक्ति थी, यह आत्मत्याग था, इसी लिये वे विदेशी होनेपर भी विजातीय सैनिकोंको युद्ध क्षेत्रमें अपना अनुसरण करनेके लिये उत्तेजित कर सके।

उदाहरणके लिये यहाँ एक सामान्य घटनाका उल्लेख करना अनुचित न होगा । जिस समय सुरेश सेण्टाक्रूज नगरमें थे उस समय ब्रेजिलका एक आदिम निवासी सुरेशके गुणोंपर इतना मुग्ध हो गया था कि उसने सुरेशके पास रहनेके लिये ही उनकी रैजीमेण्टमें अपना नाम लिखा लिया था ।

सुरेशका विवाह । निथेरायके युद्धका वर्णन करनेके पहिले हम यहाँ सुरेशके गृहजीवनके विषयमें दो चार बातें और लिख देना चाहते हैं । पाठकोंको यह बात तो विदित ही है कि उनका सम्बन्ध रायो-डि-जैनिरोके एक चिकित्सककी कन्यासे हो गया था । दोनों एक दूसरेको हृदयसे प्रेम करते थे । इसी युवतीको सन्तुष्ट करनेके लिये सुरेशने सेनामें साधारण सिपाहीकी नौकरी करना स्वीकृत किया था । यह युवती भी सुरेशके आत्मत्याग पर मुग्ध थी । यद्यपि इसने बहुत दिनोंसे सुरेशको नहीं देखा था, और इस बीचमें उसके साथ विवाह करनेके लिये बहुतसे युवक आये थे, तो भी इसने सुरेशको भुलाया नहीं था । यह युवती सबको छोड़कर उसी अपरिचित भारतीय युवककी मूर्तिको अपने हृदय-सिंहासनपर रखकर उसकी पूजा कर रही थी । जब बहुत कुछ यश सम्मान प्राप्त करके लैफ्टीनेण्ट बनकर सुरेश रायो-डि-जैनिरोको लौटे तब दीर्घ विरहकालके अनन्तर दोनों प्रेमियोंका सम्मिलन हुआ । बड़े समारोहके साथ इनका विवाहकार्य्य सुसम्पन्न हुआ । नगरके अनेक सम्भ्रान्त व्यक्तियोंने इस विवाहोत्सवमें योग दिया था । यद्यपि सुरेशके बन्धु बान्धव और घरवाले उनसे सहस्रों कोस दूर पर थे, लेकिन वहाँपर सुरेशके मित्रोंकी कमी नहीं थी । वहाँके भले आदमियोंके समाजमें सुरेशका बहुत सम्मान होता था । रायो-डि-जैनिरोके एक जमीन्दार और धनी सज्जनसे, जिनका नाम मि० लीमोस था, सुरेशकी घनिष्ठ मित्रता हो गई थी । इसी प्रकार और

भी अनेक व्यक्तियोंके साथ उनका भली भाँति परिचय हो गया था। इन्हीं मित्रोंके साथ रहते हुए सुरेशको विदेशमें घरवालोंका अभाव बहुत कम खटका ।

ब्रेजिलमें सपत्नीक रहते हुए सुरेश बड़े सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे । सन् १८९२ ई० में उनके एक पुत्र हुआ । इस समय उनके पुत्रकी अवस्था २६—२७ वर्षकी होगी ।

२७—निथेरायका युद्ध ।

सन् १८९३ में ब्रेजिलमें बलवा ठन गया । चारों ओरसे बागियोंने रायो-डि-जैनिरोको घेर लिया । सरकारी फौज युद्धके लिये बिल्कुल तैय्यार न थी । इसलिये वहाँके निवासियोंको बहुत भय लगा। किसी भाँति किलोंको युद्धके लिये ठीक ठाक करके सरकारने भी लड़ाई शुरू की । रायो-डि-जैनिरोकी खाड़ी बागियोंके जहाजोंसे भरी हुई थी। सुरेश फौजके एक बड़े हिस्सेके अफसर बना दिये गये थे । अन्तमें दोनों ओरसे तोपोंकी वर्षा होने लगी । तोपों, घोड़ों तथा सिपाहियोंके मिले हुए स्वरसे पृथ्वी गुंजायमान हो गई । युद्ध होते होते घंटों व्यतीत हो गये; बागियोंको अब प्रतीत हो गया कि राजधानी ले लेना कोई हँसी खेल नहीं । जहाजी सिपाहियोंने वहाँ अपनी फौज उतारनेकी कई बार कोशिश की, लेकिन सरकारी तोपखानेके सामने एक न चली । गोलोंकी वर्षा अभी तक बराबर होरही थी । बागियोंकी हिम्मत टूट गई । उन्होंने राजधानीका लेना असम्भव समझ कर निथेराय पर ही धावा बोल दिया। थोड़ी ही देरमें निथेरायमें भयानक गोलोंकी वर्षा होने लगी । सुरेश अपनी फौजके साथ यहीं पर थे । उनके पास अधिक तोपें तथा फौज न होनेके कारण, वे सिवाय इसके कि गोलोंकी मारसे बचते रहें, और कर ही क्या सकते थे ? ५, ६ घंटे हो गये, परन्तु गोलोंकी वर्षा बन्द

न हुई । रात्रिके कारण युद्धने अब और भयंकर रूप धारण कर लिया । थोड़ी देरमें निथेरायकी प्रसिद्धसे प्रसिद्ध इमारतें जमीनमें मिल गईं । जब बागियोंको पूरा विश्वास हो गया कि उस नगरके किनारेके पास कोई फौज नहीं है, तो उन्होंने अपनी सारी पैदल सेना वहाँ उतार दी, और बड़ी भयंकरतासे धावा करना शुरू कर दिया । निथेरायमें आई हुई फौजकी अब शोचनीय दशा थी । एक ओरसे तो जहाजों परसे गोले आ रहे थे, और दूसरी ओरसे बागी सिपाहियोंने शीघ्र चलनेवाली तोपोंसे इन सरकारी सिपाहियोंको व्याकुल कर दिया था । बागी इतनी तेजीके साथ आगे बढ़ रहे थे कि उनको रोकना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो गया था । सरकारी फौजके प्रधान अफसरने पचास सिपाहियोंको चुना, जो स्वेच्छापूर्वक आगे बढ़ते हुए बागियोंका वेग रोकनेके लिये अपने जीवन तक अर्पण करनेके लिये तैय्यार थे । सुरेश ही इनके नेता बने । सुरेश अपने साथियोंको भाँति भाँतिकी उत्तेजना देते हुए बागियोंकी तोपें छीननेके लिये आगे बढ़े । उस भयानक अँधेरी रातमें वे बड़ी वीरताके साथ बढ़ते जा रहे थे। बागियोंने इनके आनेकी आहट सुनकर कहा–" तुम कौन हो ? " सुरेशने उत्तर दिया–" हम हैं सरकारी फौजके सिपाही। " बागियोंने कहा–" आत्मसमर्पण करो, नहीं तो मारे जावोगे। " इसके उत्तरमें सुरेशने बड़े गर्वके साथ कहा–" प्रजातंत्र सरकारके वीर सिपाही आत्मसमर्पण करना जानते ही नहीं। " फिर क्या था, उन पर अग्निवर्षा होने लगी, सुरेशके संगियोंकी हिम्मत टूट गई, वे घबड़ाकर रुक गये । सुरेशने पीछे फिर कर देखा और फिर वे बड़ी उत्तेजनापूर्वक बोले–" भाइयो, दुश्मनके पास शीघ्र चलनेवाली तोपें हैं और वे लोग हमारे बहुत नजदीक हैं; पर ब्रेजिलके पुत्र क्या मृत्युसे भी डर सकते हैं। अभी हाल ही तुम देखोगे कि पवित्र भारतभूमिका यह पुत्र पाँच मिनटमें ही दुश्मनकी तोपोंको छीन लेगा। " सुरेशके साथी दृढ़प्रतिज्ञ होकर उनके साथ चलनेको तैय्यार होगये । सुरेशने कहा–

"हाँ, भाई आओ।" बस इतना कहना था कि सुरेश तथा उनके साथि-योंने इस भयंकरता और निडरताके साथ आक्रमण किया कि बागियोंके छक्के छूट गये। वे लोग भागने लगे। सुरेश तथा उनके साथियोंने सब तोपों पर अपना अधिकार कर लिया और शत्रुओंको भालोंसे मार गिराया। सुरेशकी इस विजयने युद्धकी सारी स्थितिको पलट दिया। प्रजातंत्र सरकारकी जीत हुई। सुरेशका यह आक्रमण 'बलक्लावा' स्थानके हमलेके समान ही प्रसिद्ध है

कौन ऐसा भारतवासी होगा जिसके हृदयमें इस वृत्तान्तको पढ़कर राष्ट्रीय गौरवके भाव उत्पन्न न हों? सुरेशके इस कार्य्यने भारतकी कीर्तिको निस्सन्देह बढ़ाया।

बड़े कठिन युद्धके बाद सुरेश बहुतसे कैदी साथ लेकर लौट आये, परन्तु शीघ्र ही वे हवा खानेके लिये फिर निकल खड़े हुए। अकस्मात् उन्हें कुलीन घरानेकी एक स्त्री मिल गई। वह अपने किसी मित्रके मृत शरीरको ढूँढ़ रही थी। उसने सुरेशसे कब्रस्तानका रास्ता बतला देनेका आग्रह किया। सुरेश उसके आगे हो लिये। वे बहुत दूर न गये होंगे, कि दो बागियोंने उनपर कटारोंसे आक्रमण किया, पर ज्यों ही सुरेशने तलवार खींची त्योंही दोनोंके दोनों रफूचक्कर हो गये। जब वे अपने स्थानको वापिस आ रहे थे, दुर्गन्धिके मारे एक साथ उन्हें चक्कर आने लगे, इसलिये वे एक निकटवर्ती चट्टान पर जा बैठे। थोड़ी देर बाद उनके हाथ पाँव ठंडे पड़ गये और वे बेहोश हो गये। दो अपरि-चित आदमी उन्हें अर्द्धनग्न अवस्थामें अस्पतालको ले गये। तीन दिन तक उनकी यही दशा रही। आठ दिनमें वे बोलने योग्य हुए, और तब कहीं वे डाक्टरको अपना पता बता सके। सुरेशके मिलने पर उनके मित्रों तथा फौजी सिपाहियोंको, जो उन्हें मृत समझते थे, जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है।

२८—उपसंहार ।

इस विस्मयकर और विचित्रघटनापूर्ण जीवनीके विषयमें अब हमें कुछ नहीं लिखना है । कायर और डरपोक कहलानेवाली बंगाली जातिमें लैफ्टीनेण्ट सुरेश विश्वासका उत्पन्न होना, बड़े सौभाग्यकी बात थी । उन्होंने अपनी बुद्धिमत्तासे जो अक्षय यश प्राप्त किया उससे भारतवर्षका भी गौरव बढ़ा, इसमें कोई सन्देह नहीं । विजयी होनेके अनन्तर वे अपने कुटुम्बके साथ बड़े आनन्दसे रहने लगे । अब सामाजिक तथा आर्थिक कठिनाइयाँ भी उनके मार्गसे दूर हो गई थीं । १४ वर्षकी उम्रसे सुरेश विश्वास संसार-समुद्रकी भीषण तरङ्गोंमें पड़ गये थे । ईश्वरी कृपासे तथा अनथक परिश्रमसे वे किनारे जा लगे । निर्धनता और दीनताके मेघोंके दूर हो जानेपर सुरेशका भाग्याकाश निर्मल हो गया । उनकी कीर्तिकौमुदीने चारों दिशाओंको मुग्ध कर दिया । विलायतके सुविख्यात प्राचीन पत्र टाइम्सको भी, जो भारत-वासियोंका घोर शत्रु है, यह बात स्वीकार करनी पड़ी थी कि "जो बंगाली जाति एक ही समयमें सुरेश विश्वास, जगदीशचन्द्र बसु और अतुलचन्द्र चट्टोपाध्याय उत्पन्न कर सकती है वह कदापि घृणा करने योग्य नहीं है।" यहाँ पर हमें यह बात खेदपूर्वक लिखनी पड़ती है कि इसके बाद लैफ्टीनेण्ट सुरेश विश्वासके पास जो पत्र भेजे गये वे सब वापिस ही आये । पीछेसे यह पता तो लगा था कि वे कर्नलके पदपर सुशोभित थे । उनके सम्बन्धियोंने जो चिट्ठियाँ उन्हें भेजीं उनका कुछ भी जवाब नहीं आया । जब रायो-डि-जैनिरोके ब्रिटिश कौन्सलको पत्र भेजा गया तो वहाँसे उत्तर आया कि २२ अगस्त सन् १९०६ को सुरेश विश्वासका स्वर्गवास हो गया । हम यहाँपर सुरेशके एक मित्र मि० पुनांडो लीमोस साहबका एक पत्र उद्धृत करते हैं । इससे

पता लग सकता है कि सुरेश विश्वासने वहाँ ब्रेजिलमें कैसी कीर्ति प्राप्त की थी । यह पत्र सुरेश विश्वासके पिताको भेजा गया था । लीमोस साहब ब्रेजिलके एक सन्माननीय धनाढ्य व्यक्ति हैं, अतएव उनके पत्रका महत्त्व और भी ज्यादः है ।

रायो-डि-जैनिरो.

१२ मार्च सन् १८९४ ।

प्रिय महाशय,

आपको यह तो मालूम ही होगा कि आपके पुत्र ब्रेजिलकी सरकारी सेनामें नौकर थे । ब्रेजिलकी एक पैदल सेनामें वे फर्स्ट लैफ्टीनेण्टके उच्च पद पर थे, तथा अब भी हैं । सम्प्रति निथेरायके युद्धमें वे अपनी अदम्य वीरता, उत्साह और रणकौशलकी वजहसे अत्यन्त यशस्वी हुए । उस स्मरणीय रात्रिको भीषण युद्धमें शत्रुओंने ६ घंटे भयंकर गोलाबारी करके उसे घेर लिया । हमारे परम बन्धु और आपके सुपुत्र सौभाग्यवश वहाँ उसी जगह अपनी फौजके साथ उपस्थित थे । ५० आदमियोंके साथ वे शत्रुओंके घोर आक्रमणको रोकनेके लिये भेजे गये । शीघ्र ही दुश्मनोंने उन्हें ताड़ लिया । सुरेशको एक आवाज सुनाई पड़ी—“ कौन आता है ? ” सुरेशने फौरन ही इसका जवाब दिया—“ हम प्रजातंत्र सरकारके वीर सिपाही हैं । ” शत्रुओंने कहा—“ या तो हथियार रख दो या मारे जावोगे । ” इसके उत्तरमें सुरेशने कहा—“ प्रजातंत्र सरकारके वीरयोद्धा आत्मसमर्पण करना जानते ही नहीं ” और उन्होंने फिर कर अपने साथियोंसे कहा—“ जल्दी दुश्मनोंपर धावा करो । ” शत्रुओंने उनको रोकनेके लिये अपनी तोपोंसे खूब गोले बरसाना शुरू किया । सुरेश कुछ देर ठहरे और फिर उन्होंने अपने साथियोंसे कहा—“ भाइयो ! दुश्मन लोग रिवाल्वर तोपोंके साथ

हमारे बहुत नजदीक हैं। हमारी प्रिय भूमि ब्रेजिलके वीर पुत्रोंके दिल मौतके डरसे कभी नहीं घबड़ा सकते। अब तुम देखो पवित्र भारतभूमिका पुत्र पाँच ही मिनटमें दुश्मनोंकी तोपोंको छीनता है। हाँ, तैय्यार होकर मेरे पीछे आओ।" इतना कहकर उन्होंने शत्रुओंपर घोर धावा किया। दुश्मन घबड़ा गये। फिर क्या था, थोड़ी देरमें सब तोपें सुरेशके अधिकारमें आगईं। इस प्रकार सुरेशको विजय प्राप्त हुई।

फरवरी महीनेके अन्त तक सुरेश हमारे घर पर थे। वे हमारे परिवारके बड़े भारी मित्र हैं। उन्होंने एक दिन हमसे कहा था—"अगर मैं यहाँसे कहीं चला जाऊँ तो कृपा करके कलकत्तेको एक चिट्ठी लिख भेजना कि सुरेश जहाँ गया वहीं यशस्वी हुआ, और उसका पुत्र भी उसी मार्गका अनुसरण करेगा।" अपनी नवविवाहिता पत्नी तथा सोलह महीनेके एक पुत्रको वे यहाँ छोड़कर कहीं चले गये हैं। जब तक ये लोग जीवित रहेंगे तब तक हमारे लिये ये अत्यन्त आदरणीय होंगे। इन लोगोंके पालन-पोषणके लिये वे बहुत काफी रुपया छोड़ गये हैं, और मेरे भी बहुत कुछ धन सम्पत्ति है। समाजमें सुरेशचन्द्र अत्यन्त धीर-प्रकृति, आचार-व्यवहारमें अति सभ्य और विद्वान् कहकर प्रसिद्ध हैं। उनका मस्तिष्क नवीन नवीन भावोंसे पूर्ण है, तथा वे सर्वदा विज्ञान-चर्चामें लगे रहते हैं। विपत्तिमें वे निर्भीक हैं। आजकल वे दर्शन-शास्त्रमें अनुरक्त हैं। चिकित्साशास्त्रमें वे इतने चतुर हैं कि उन्होंने मेरी स्त्रीके लकवासे मारे हुए एक पाँवको एक सप्ताहहीमें आराम कर दिया। इसे कोई भी डाक्टर आराम नहीं कर सका था। इन चिकित्साओंको वे दैहिक तड़ितके नामसे पुकारते हैं। उन्होंने हमारी पत्नीको कोई दवा दारू नहीं दी थी, उसके शरीर पर सिर्फ उँगलियाँ चला कर ही उसे आराम कर दिया।"

कर्नल सुरेश विश्वासके जीवनकी घटनाएँ हमने लिख दी हैं । ये ऐसी विचित्र हैं कि पढ़नेमें चक्करदार उपन्यासकी तरह प्रतीत होती हैं । इस समय कर्नल सुरेशचन्द्र विश्वासके माता पिता इस संसारमें नहीं हैं । उनके चाचा कैलाशचन्द्र विश्वास अब भी कलकत्तेके वेलीगंज मुहल्लेमें निवास करते हैं । मृत्युके समय सुरेशकी उम्र ४५ वर्ष थी । उनके ज्येष्ठ पुत्रकी उम्र लगभग २६–२७ वर्ष है ।

प्रतिकूल परिस्थिति होते हुए भी एक प्रतिभाशाली पुरुष अपने प्रचंड प्रतापकी प्रभाको भले प्रकार प्रकाशित कर सकता है, यही उपदेश हम सुरेश विश्वासकी जीवनीसे प्राप्त करते हैं । पवित्र मातृभूमिके स्वाधीनता-संग्राममें भारतसन्तान वीरता और प्रेमपूर्वक अपने जीवन अर्पण करना सीखें, बस यही हमारी परमपिता परमात्मासे प्रार्थना है ।

समाप्त ।

परिशिष्ट ।

लैफ्टीनेण्ट सुरेश विश्वासने अपने काकाके पास कलकत्ते बहुतसी चिट्ठियाँ भेजी थीं, उनमेंसे कितनी ही चिट्ठियाँ तो खो गईं; जो बाकी बची हैं उनका अनुवाद यहाँ दिया जाता है ।

(१)

सेण्टाक्रूज, ८ वीं फरवरी १८८७ ।

प्रिय काका महाशय,

ऊपर सेण्टाक्रूजका ठिकाना देखकर आप यह समझ लेंगे कि मैं आज इस समय रायो-डी-जैनिरोमें नहीं हूँ । मेरी बदली वहाँसे यहाँको हो गई है । यह सेण्टाक्रूज एक छोटासा गाँव है । कई साल पहले यह ब्रेजिल देशके सम्राटकी निजी सम्पत्ति था, और उन्हींके गुलाम यहाँ खेती करते थे, लेकिन अपनी सर्वजनविदित स्वाभाविक करुणाके वश सम्राटने इन दासोंको मुक्ति प्रदान कर दी है, इसी वजहसे यह स्थान बिल्कुल ऊजड़ हो गया है और इस समय यह केवल गाय भैंसोंकी चरागाहका काम दे सकता है । मैं आजकल घुड़सवारोंमें हूँ, और इसी सैनिक पदपर रहते हुए मुझे घोड़ों वगैरःकी देखरेख करनी पड़ती है । इन्हीं सब लड़ाईके घोड़ोंके लिये, तथा दूसरे जानवरोंके चरानेके लिये इस जगहकी विस्तीर्ण पहाड़ी जमीन निर्दिष्ट कर दी गई है । काका महाशय, मैं बड़े आनन्दके साथ आपको बतलाता हूँ कि इस वक्त मैं सैनिक श्रेणीके एक उच्चतर पदपर नियुक्त कर दिया गया हूँ । अब मैं सामान्य सैनिक नहीं हूँ । जिस पद पर अब मैं हूँ उसे फरासीसी भाषामें केबो० डी० एस्कोयाड्रा और अँगरेजीमें कार्पोरैल कहते हैं । अब मैं अपने नीचेके सिपाहियोंका परिचालन

स्वेच्छानुसार कर सकता हूँ । आपने मुझको बार बार लिखा है कि जहाँ कहीं मैं जाऊँ और जिन जिन जातियोंको मैं देखूँ, उनके बारेमें मैं आपको लिखूँ। लेकिन ऐसा करनेसे मुझे बड़ी बड़ी पोथियाँ लिखनी पड़ेंगीं। मेरे कितने ही यूरोपीय बन्धु भी, जब वे मेरी बातचीत सुनते हैं, मेरी अभिज्ञता और अनुभवको जानते हैं, तब वे भी मुझे ऐसा ही करनेका अनुरोध करते हैं । वास्तवमें मैंने बहुत कुछ अध्ययन किया है। मैं प्रायः सभी विज्ञानोंसे परिचित हूँ और सात भाषायें भी जानता हूँ। अँगरेजी, फरासीसी, जर्मन, स्पेनिश, और पुर्तगीज भाषा मैं बोल सकता हूँ, तथा इटेलियन, डेनिश, और डच भाषा कुछ कुछ जानता हूँ, लेकिन इनकी गणना मैंने नहीं की है । घरसे मैं एक पैसा भी लेकर नहीं चला था, और क्या कहूँ घरसे चलते समय मैं लगभग बिल्कुल नंगा ही था। बराबर मेरी यही इच्छा रही थी कि मैं अपनी पूज्य माताजीके दर्शन करूँ और उनके सिरको माणिमुक्ताओंसे सुशोभित करूँ। अगर मैं उनके दर्शन कर सकता, तो मैं बहुत दिन पहिले ही ऐसा कर चुकता—क्योंकि अब मेरी वैसी स्थिति भी हो गई है। लेकिन परम्पिता परमात्माकी इच्छा दूसरी ही थी, इसी कारण इस जीवनमें उनके दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे नहीं मिला। हा! संसारमें मैं अकेला ही हूँ और अकेला ही रहूँगा। जो कुछ मेरे भाग्यमें लिखा होगा सो होकर रहेगा। हा! सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके असीम राज्यमें एकाकी भ्रमण करना और प्रकृति जननीके शोभासौन्दर्य्यका उपभोग करना, बस यही मेरा एकमात्र सुख है । सच्ची मित्रता और सत्य प्रेम संसारमें दुर्लभ है और इसीलिये ही दार्शनिक पंडितोंने कहा है—“पृथ्वीपर निवास करना और अभिनव जगतकी सृष्टि करना एक ही बात है।” मैंने कल्पनाशक्तिसे दिव्य निकेतन निर्माण किया है । एक दिन मैं वहीं अपनी स्नेहमयी जननीके दर्शन करूँगा । आप सब लोग मुझे एक

हृदयविहीन और उद्देश्यहीन चक्कर मारनेवाला समझते हैं । काका, आज सहस्त्रों व्यक्तियोंने इसी चक्कर मारनेवालेके सामने सिर झुकाये हैं, और क्या कहूँ डरावने जंगली जानवर भी इस उद्देश्यहीन चक्कर मारनेवालेके सम्मुख मुग्ध और शान्त होकर खड़े हुए हैं । संसारमें सैकड़ों ही आदमी अपने घरवालोंसे विताड़ित होकर निर्धन भिखारीकी तरह डोलते हैं, और आपका विताड़ित और परित्यक्त 'सुरी' भी उन्हींमेंसे एक है ।

काका ! उद्देश्यहीन चक्कर मारनेवालोंकी कथायें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं, और यह शब्द ही मुझको बहुत पसंद है। इसका कारण यही है कि जिसे आप चक्कर मारनेवाला कहते हैं वही मेरे लिये पवित्र सत्य है । 'चक्कर मारनेवाला' कहते किसे हैं ? जिसके रहनेके लिये कहीं जगह न हो, और जिसके लिये कोई कभी एक बार भी फिक्र न करे वही चक्कर मारनेवाला कहलाता है । फलतः वे लोग ही समधिक ज्ञानी होते हैं, क्योंकि बन्धनविहीन होनेसे वे नित्य नये तत्त्वोंके अनुसन्धान करनेमें लगे रहते हैं । पृथ्वीमें जो सुख नहीं हैं उन सुखोंको प्राप्त करनेके लिये वे प्रयत्न करते हैं और वे उन सुखोंके अधिकारी भी बनते हैं । अखिल ब्रह्माण्डपति परमेश्वरके विशाल, विचित्र विश्वके वे उत्तराधिकारी हैं और इसी विश्वास—इसी ध्रुव विश्वासके सहारे वे किसी ओर अपनी दृष्टि न डालते हुए आनन्दसे नाचते गाते बजाते अपने दिन बिताते हैं ।

अब तक कौन मनस्वी व्यक्ति इस माधुर्य्यमय संसारकी मायापर मुग्ध हुआ है ? वीरगणोंमें प्लेटो या विजेता पासेमियससे लगाकर जर्मन-सम्राट विलियम तक, कवि और तत्त्ववेत्ताओंमें जोरोष्टर, प्लेटो, होरेससे लेकर शेक्सपियर, सिलार, गेटे और गोल्डास्मिथ तक देख जाइये । × × × ये सब महाधीशक्तिसम्पन्न अतिशय अभिमानी, विशुद्धचेता और

सुतीक्ष्ण कल्पनाशील पुरुष थे ।× × इन सबको सांसारिक सम्पत्तिकी लालसा नहीं थी । अन्य लोग जिसे जाननेके लिये व्यस्त होते हैं, उसके लिये वे उत्सुक नहीं होते; अपनी अपनी मनोवृत्तिके अनुसार ही ये लोग सर्वदा व्यस्त रहते हैं । उर्व्वर कल्पनाशक्तिके प्रभावसे ये लोग शून्यमार्गमें उड़नेका प्रयत्न करते हैं । उनकी चिन्ता, कल्पना और कार्य्य विविध विचित्र रहस्यों और भेदों तथा नवीन तत्त्वोंके अनुसंधानमें लगे रहते हैं । साधारण सामाजिक अथवा विषयसम्बन्धी व्यापारोंमें उनकी अणुमात्र भी आसक्ति नहीं होती । उनकी चित्तवृत्ति बराबर उच्च मार्गकी ओर दौड़ती रहती है । ऐसा होना ही चाहिये । क्योंकि आत्मामें ईश्वरका अंश होनेसे वे दिव्यज्ञानसम्पन्न हैं । अस्तु, इन उच्च प्रदेशोंकी बात एक मिनिटको यहीं छोड़ता हूँ । आपने जो मुझे लिखा है कि मैं कलकत्ते आकर आप लोगोंके दर्शन करूँ और इस प्रकार अपने पिताजीकी आज्ञाका पालन करूँ, सो ऐसा करनेमें मैं बिल्कुल ही असमर्थ हूँ । वहाँ मेरे लिये कुछ भी नहीं है । जो मुझसे प्रेम करती थी तथा अब भी करती है, और जिसे मैं प्रेम करता था तथा अब भी करता हूँ, वह अब इस मर्त्यलोकमें नहीं है । मैं धैर्य्य धारण करता हुआ और उसीकी बाट देखता हुआ यहाँ रहता हूँ, और यहीं रहूँगा, जब तक कि उस प्रेमी पथिकसे मिलनेके लिये मैं उसीके मार्गका अनुसरण न करूँ । वही अनन्त पथकी यात्रिणी चक्षुओंसे अगोचर मेघ-मालाके भीतर मणिमय मन्दिरके द्वारपर मेरी अपेक्षा कर रही है ।

आपका

बहुत दिनोंसे खोया हुआ

लेकिन जीवित

सुरेश ।

(२)

राया–डि–जैनिरो ।

काका महाशय,

मैं समझता हूँ कि इस पत्रके प्राप्त होनेके पहले आपको मेरा एक और पत्र मिला होगा। आज बड़े दुःखित हृदयसे और विरक्तिके साथ मैं आपको पत्र लिख रहा हूँ। हमारे अस्पतालमें पीतज्वरसे बहुत बहुत आदमी मर रहे हैं। इसी कारण मुझे अपना घर छोड़कर दूसरा घर लेना पड़ा है। एक बार इस बातकी कल्पना तो कीजिये कि इन भीषण गर्मीके दिनोंमें मुझे कैसा कष्टकर कार्य्य करना पड़ता है! आजकल यहाँ तापमान यंत्रकी ९३ डिग्रीसे लेकर ९८ डिग्रीतक गर्मी पड़ती है। इसके सिवाय यहाँपर विद्रोह तो चल ही रहे हैं और उससे हम लोगोंकी सेनाके कुछ सिपाही भी घायल होकर यहाँ आ गये हैं। इस पत्रके लिखते समय भी मुझे उनकी कातरध्वनि सुनाई पड़ रही है। काका महाशय, हमारे पुराने अस्पतालके भीषण दृश्यको आप अपनी कल्पनामें भी न ला सकेंगे। पुराना अस्पताल इस नई जगहसे बहुत दूर नहीं है। जहाँ पहिले जेसूट सम्प्रदायका पुराना चर्च था उसीमें अब पुराना अस्पताल है। इस समय भी वहाँका एक कमरा मेरे अधिकारमें है, क्योंकि अभी मैं वहाँसे अपना सब समान नहीं ला सका हूँ। इसके सिवाय मुझे वहाँ जाकर औषध भी तय्यार करनी पड़ती है (मैंने डाक्टरी सीख ली है) और चीरफाड़के अस्त्र भी वहीं पर हैं। अगर मैं कुछ दिन और यहाँपर रहा, तो एक अच्छा सर्जन बन जाऊँगा। मैं प्रायः सब प्रकारकी चीरफाड़ करनेमें समर्थ हूँ, और डाक्टर भी मेरी चीरफाड़ोंको ठीक बतलाकर उनका अनुमोदन करते हैं। जिस अस्पतालकी बात मैं कह रहा हूँ वह एक बड़े 'हाल' या भवनमें है। उसमें ऊपरसे प्रकाश आनेका रास्ता है। जिस समय यह घर सूना

होता है उस समय कब्रस्तानकी तरह दीख पड़ता है । साधारणतः इस घरमें घुसनेसे लोगोंको डर लगता है। वास्तवमें इसमें जानेकी हिम्मत किसीकी भी नहीं पड़ती । कामकी वजहसे मुझे वहाँ बार बार जाना पड़ता है । लेकिन मुझे इससे बिल्कुल भय नहीं लगता, क्योंकि मेरा विश्वास है कि भूतप्रेत हम लोगोंको तङ्ग करनेके लिये नहीं आवेंगे । भूत प्रेतोंके बारेमें बहुतसे किस्से सुने जाते हैं, लेकिन वे सब मनुष्यकी कल्पनासे निकले हुए हैं । मैं इस बातपर विश्वास करता हूँ कि प्रेतात्माएँ होती हैं, लेकिन वे भूतोंसे बिल्कुल भिन्न होती हैं । परन्तु जिन घरोंमें भूतोंका वास कहा जाता है वे निस्सन्देह भयानक होते हैं । काकाजी, मुझे मृत्युसे बिल्कुल डर नहीं लगता । मरनेवाले कितने ही रोगियोंका मैंने इलाज किया है । कितने ही आदमी मर भी गये हैं । अगर मेरी भी मृत्यु आजावे तो और भी अच्छा हो । परमात्माने यदि मेरी रक्षा की तो एक न एक दिन आपके दर्शन करूँगा, यही मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात होगी । खैर, अब मैं इस खेदोत्पादक विषयके बारेमें अधिक नहीं लिखता ।

काकाजी, मैं शीघ्र ही इस स्थानसे चला जाऊँगा और किसी ऐसी चीजका आविष्कार करूँगा जिससे मेरा यात्रा करनेका खर्च निकल सके । क्योंकि यात्रा करनेमें ही मुझे आनन्द आता है और इससे मेरे हृदयमें एक नवीन भाव उत्पन्न होता है—वह यह कि कभी न कभी मैं घर भी पहुँचूँगा । मैं बराबर भ्रमण करूँगा, क्योंकि गति ही सृष्टिका नियम और जीवनका लक्षण है । इसके सिवाय मेरा जो लक्ष्य और उद्देश्य था कि मैं ब्रेजिलमें आकर समरविभागमें उच्चपद प्राप्त करूँ सो वह भी पूर्ण हो गया है । मेरा पहला उद्देश्य था घृणार्ह रमणी जातिकी साधुताकी परीक्षा, और दूसरा यह था कि युद्धविभागके एक कर्मचारीसे, जिसने मेरे मित्रका अपमान किया था, मैं बदला लूँ ।

ये दोनों उद्देश्य मेरे पूर्ण हो गये हैं । मैंने रमणी जातिको घृणा-सहित परिवर्जन कर दिया है, और मेरे मित्रका वह शत्रु मेरे आगमनके भयसे भाग गया है। अनेक कष्ट पानेपर ये कार्य्य पूर्ण हुए हैं। सुखजनक नास्यमय जीवनको परित्याग करके मैंने दुःखयुक्त और कठोरतामय सैनिक जीवन अपनी इच्छासे तीन वर्षके लिये ग्रहण किया था। सन् १८८९ की १० वीं मईको मेरे सैनिक जीवनका अन्त हो जावेगा। तब इसको नमस्कार करके नवीन कार्य्यको ग्रहण करूँगा। जैसा कि पहिले लिख चुका हूँ, अब जहाँ मेरी इच्छा होगी वहीं जाऊँगा। अब मैं कोई ऐसी चीज निकालूँगा जिसके सहारे मैं पहलेकी भाँति सुख-स्वच्छन्दतापूर्वक भले आदमीकी तरह जीवन व्यतीत कर सकूँ, और मैं सर्वदा भले आदमीकी तरह ही रहा हूँ । यद्यपि बालकपनमें घर पर मैंने कभी कभी बड़ी दुष्टताएँ की थीं, लेकिन तब भी मैंने सरलता और ईमानदारीके साथ सन्मार्गका अनुसरण किया है; और मैं अपने हृदय और मनकी उदारताकी रक्षा कर सका हूँ। आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंकी तरह मैं फिर स्वाधीन होकर प्रफुल्लित चित्तसे भिन्न भिन्न देशोंमें भ्रमण करूँगा और नवीन सुखोंका उपभोग करूँगा; इसकी कल्पना करके मेरा हृदय अपार आनन्दसे भर जाता है। आविष्कार अथवा अनुकरण करनेके लिये मैं विज्ञानका ही सहारा लूँगा । सिंह, चीता, रीछ, हाइना, हाथी वगैरःको सिखलाना यह कोई विज्ञानकी बात नहीं है । मैं एक बोलनेवाला मूँड़, बिजलीकी लड़की, भौतिक मेज और एक स्वच्छ बालिका (जिसके शरीरके भीतर होकर देखा जा सके) बनाऊँगा । इस देशमें और दूसरे देशोंमें भी इन चार नवीन वस्तुओंसे रुपया कमा सकूँगा।

काका महाशय, रुपया कमानेके लिये जिसके पास मस्तिष्क है और जो सरल हृदय है उसके लिये इस संसारमें रुपया अत्यन्त सुलभ सामग्री

है। प्रत्येक व्यक्ति निजके लिये है और परमात्मा सबके लिये है। मैं पृथ्वीपर हूँ और समग्र पृथ्वी मेरे लिये है। परमात्माकी शक्ति सर्वोच्च है। संसारको परमात्माका माननेसे हमारे सङ्ग सङ्ग सब पदार्थ चल सकते हैं।

सब विज्ञानोंमें चिकित्सा-विज्ञान ही सर्वोत्तम है। मैंने इसको खूब होशियारीके साथ सीखा है, और इसके गुह्यत्तम विषयोंको भी जान लिया है। मैं इस विज्ञानकी पूजा करता हूँ, लेकिन इसके अध्यापकोंसे मैं घृणा करता हूँ। इसका कारण यह है कि उनके हृदयमें उदारताका बड़ा अभाव होता है। उदारताके बिना चिकित्सक वैसा ही है जैसा कि परोंके बिना अप्सरा। सब शास्त्रोंमें मनोविज्ञान—अर्थात् जिस शास्त्रके द्वारा सृष्टिकर्ता ईश्वरका अनुसंधान कर सकते हैं, और जिसके द्वारा उसको जान सकते हैं—सबसे महान् और उच्च है। इस सम्बन्धमें मैं कुछ समालोचना नहीं करूँगा, क्योंकि उसके स्मरणसे ही आपके हृद-यमें भयका संचार हो जावेगा। इस विषयमें मैंने जो कुछ परीक्षा की है, उससे मेरे हृदयमें भयके भाव उत्पन्न हो गये हैं।

भवदीय स्नेहाधीन

सुरेश।

(३)

रायो-डि-जौनिरो।

१२ वीं मई सन् १८९३।

काका महाशय,

वस्तुतः बहुत दिनोंसे आपके पाससे कोई पत्र नहीं आया। पिछली साल मैंने आपको एक पत्र लिखा था। इस पत्रमें मैंने बलवेका, जिसमें हम लोगोंने भी कुछ भाग लिया था, हाल लिखा था। परन्तु आज तक उस पत्रका उत्तर नहीं आया। युद्धविभागमें मेरा काम ठीक

तरह चल रहा है। प्रथम सर्जेण्टके पदसे मुझे ब्रिगेडका पद दे दिया गया है। इसके बहुत पहले ही मैं एक उच्च पदस्थ अफसर बना दिया गया होता, लेकिन मैं एक विदेशी हूँ और यह बात मेरी उन्नतिमें बड़ी बाधा डालनेवाली रही है। परन्तु अब ब्रेजिलमें रहते हुए मुझे ६ वर्ष हो गये हैं और लोग मुझसे भली भाँति परिचित हो गये हैं। इन बातोंसे मेरे पक्षमें बहुत कुछ सुविधायें होंगी। आप जानते ही हैं कि यहाँ पुर्तगीज भाषा काममें लाई जाती है। जब मैं यहाँ आया था मैं इस भाषाको बिल्कुल नहीं जानता था और न इसमें बातचीत ही कर सकता था, लेकिन अब मैंने इस भाषाका अध्ययन कर लिया है, और इस समय मैं एक ऐसे पद पर स्थित हूँ जिस पर काम करनेकी योग्यता हमारी रजीमेण्टमें बहुत कम लोगोंको है। यथासमय मैं आपको अपनी पदोन्नतिके विषयमें लिखूँगा, जब वह सरकारी तौरपर प्रजातंत्र राज्यके प्रेसीडेण्टकी ओरसे प्रकाशित होगी। पिछली वर्षोंमें मैंने जो सेवायें की हैं, उनकी प्रशंसा सरकारी कागजोंमें बहुत कुछ लिखी गई है, और विना एक भी दिन कारावास भोगे मैंने यश प्राप्त किया है। आज कल रायो-ग्राण्डी-डी-शिउल नामक स्थानमें युद्ध और विद्रोह चल रहा है। वहाँ जानेकी मेरी बड़ी इच्छा थी, लेकिन वहाँ जानेके लिये अभी तक हम लोगोंको कुछ भी आज्ञा नहीं मिली है।

पिताजी आजकल कैसे हैं? क्या कभी वे मेरी याद करते हैं? खास करके उनसे कह देना कि ईश्वरकृपासे मैं अच्छी तरह हूँ। अब मैं मनुष्य बन गया हूँ, समाजमें मेरी इज्जत होती है और सब लोग मेरा सम्मान करते हैं। बदमाशोंके लिये मैं बदमाश हूँ, डाँकुओंके लिये डाँकू, भले आदमीके लिये भला आदमी और दार्शनिकके लिये दार्शनिक।

मैं अपने परिश्रमसे ही सुशिक्षित मनुष्य बना हूँ, क्योंकि १४ वर्षकी उम्रसे लेकर आज तक मेरे लिये किसीने प्रयत्न नहीं किया। आज मैं ३२ या ३४ वर्षका हूँ—ठीक ठीक नहीं मालूम मेरी क्या उम्र है।

कर्नल सुरेश विश्वास।

कुछ भी हो मुझे इस बातसे आश्चर्य्य है कि इतनी ही उम्रमें मेरे सिरके बाल सफेद हो गये हैं, और मेरे सिरके ऊपरी हिस्सेमें तो बाल बिल्कुल ही नहीं रहे। सबको मेरी याद दिलाइये और जो लोग मुझे जानते हैं उनका समाचार लिखिये।

भवदीय स्नेहाधीन
सुरेश।

(४)

रायो-डि-जैनिरो।
१०–१–९४।

काका महाशय,

आपको चिट्ठी भेजनेमें फिर देरी हो गई। कारण यह था कि मैं तभीसे वातरोगकी वजहसे खाटपर पड़ा हुआ हूँ। लगभग एक वर्षसे मैं इस रोगसे आक्रान्त हूँ। पिछले सप्ताह मर्करी और आयोडाइड आव पोटाशकी एक बड़ी खुराक खानेसे मेरा दर्द कम हो गया है, किन्तु इन दवाइयोंमें जहरके कुछ लक्षण मालूम होनेसे मैंने इनका सेवन करना बन्द कर दिया है। डाक्टर लोग कहते हैं कि इस रोगसे पूर्णतया मुक्त होनेमें बहुत दिन लग जावेंगे।

पत्रके साथ ही मैं आपको दो फोटोग्राफ भेजता हूँ—एक आपके लिये है और एक पिताजीके लिये। न जाने क्यों मेरे मनमें यह धारणा हो गई है कि मेरे पिताजी अब जीवित नहीं हैं। मुझे यह नहीं मालूम कि मेरी यह धारणा सत्य है या मिथ्या! ब्रेजिल देशके पैदल सिपाहियोंकी फौजके लैफ्टीनेण्टकी पोशाकमें अपने लड़केको देखकर उन्हें अवश्य ही प्रसन्नता होगी, क्योंकि यह गौरव उन्हींके कारण प्राप्त हुआ है। आप यह सुनकर आश्चर्य्य करेंगे कि इस पोशाकके तैय्यार करानेमें मेरे एक हजार डालर खर्च हुए हैं, क्योंकि सुन्दर कपड़े पर रेशम और सोनेकी जरीसे यह बना हुआ है।

अपनी पत्नीका भी एक फोटो भेजता हूँ । यह विवाहके पहिलेका है । अपने पुत्रका फोटो मैंने अभी खिंचवाया नहीं, इसलिये उसे नहीं भेज सका । मैं अपने लापता होनेकी घटनाके विषयमें यहाँ लिखता हूँ। जिस दिन युद्ध हुआ था उस दिन शामको मैं जहाजी फौजके दस आदमियोंको कैद करके अपने निवासस्थानकी ओर लौट रहा था। तत्पश्चात् मैं अकेला घूमनेके लिये निकला। रास्तेमें एक भद्रवेशी रमणीने आकर मुझसे पूँछा—" मरे हुए आदमी कहाँ पड़े हैं? "मैंने खुशीके साथ वहाँ जाकर उसको वह स्थान दिखला दिया। उस समय दो जहाजी आदमियोंने लम्बी लम्बी कटारोंसे मेरे ऊपर आक्रमण किया। मैंने भी तलवार निकाल कर अपना बचाव किया। आत्मरक्षा और आक्रमणके लिये मुझे यथेष्ट समर्थ देखकर वे लोग जल्दीसे भाग गये । मैंने फौरन ही अपने स्थानको वापिस आनेका विचार किया । यह स्थान थोड़ी ही दूर पर था, और यहीं पर मेरे सिपाही थे । लेकिन वहाँकी दुर्गन्धिसे मेरी तबियत घबड़ाने लगी । मैं पचास पद भी आगे न चला था कि एक साथ मुझे चक्कर आ गया । मैं अपने पासहीके एक पत्थर पर बैठ गया और अपनी हालत पर विचार करने लगा । चारों ओरकी चीजें मुझे अन्धकारमय दीखने लगीं । उस समय मेरे तलवे ठंडे होने लगे । यही ठंड मेरे पैरों और घुटनों तक होती हुई छाती तक पहुँच गई। फिर वही ठंड कानोंतक चली गई । इसके बाद चेहरे परसे उतरती हुई मेरी छातीपर आ गई। मैं बेहोश हो गया । तीन दिन बाद मुझे होश आया। दो अपरिचित आदमियोंके द्वारा मैं अर्द्धनग्न अवस्थामें अस्पतालको लाया गया। डाक्टर मुझे नहीं पहिचानते थे । आठ दिन बाद जब मैं कुछ बात करने लगा तो अपने स्थानको लौट आया। इस प्रकार खोकर मैं लोगोंको फिर मिल गया, क्योंकि लोग तो मुझे मरा हुआ समझे हुए थे ।

भवदीय स्नेहाधीन,

सुरेश ।

(५)

रायो-डि-जैनिरो ।
३ सितम्बर सन् १८९४ ।

प्रिय काका महाशय,

आपका पत्र मिले आज कई दिन हुए । उससे मुझे पता लगा कि मेरी युद्धसम्बन्धी सफलतासे मेरे कई देशवासी बड़े सन्तुष्ट हुए हैं । लेकिन मेरे लिये उसमें कोई असाधारण बात न थी, क्योंकि उस समय मेरे लिये यह बात बिल्कुल स्वाभाविक थी । इसमें कुछ आश्चर्य्य नहीं । इसके सिवाय कितने ही अफसरोंने और भी अधिक कार्य्य किया था, लेकिन दुःखकी बात है कि उनमेंसे कितनोंहीके दर्शन मैं इस संसारमें नहीं कर सकूँगा । यहाँपर मैं अपनी सामरिक शिक्षाके विषयमें कुछ लिखूँगा । पहले मैंने घुड़सवारोंमें तीन साल तक नौकरी की, फिर पैदल दलमें पाँच वर्ष तक कार्य्य किया । जब गत ६ वीं सितम्बरको यहाँ विद्रोहाग्नि प्रज्वलित होने लगी, और लड़ाईके जहाजोंने हमारी रायो-डी-जैनिरोकी सुन्दर खाड़ीको बन्द करके सेण्टाक्रूज, केज, और सौ तथा ज्वाओ नामक किलोंपर गोले बर्साने शुरू किये उस समय मेरी समझमें यह बात आ गई कि अब मेरे लिये कार्य्य करनेका समय आ पहुँचा है । इन सब किलोंने जहाजोंके भयंकर गोलों-के जवाबमें गोले फैंकने शुरू किये । देखते देखते देशमें चारों ओर रँगरूट भर्ती होने लगे । सेनाओंका संग्रह होना शुरू हुआ । खाड़ीके किनारेके सब ऊँचे ऊँचे स्थान सुदृढ़ बनाये गये । कभी यहाँ कभी वहाँ चारों ओर छोटी मोटी मारकाटें हो रही थीं, और गोले बरस रहे थे । रायो-डि-जैनिरोमें सहस्रों विदेशी आदमी रहते थे, इस लिये जब विद्रोही जहाजी फौज अपने बीस रणपोतोंके साथ उस स्थानको विध्वंस नहीं कर सकी तो उसने निथेराय पर आक्रमण किया । शत्रुपक्षने

नगरको धूलमें मिला दिया । विद्रोही लोग, यह समझकर कि हम लोग नगरनिवासी थक गये होंगे, अथवा उनसे युद्ध करनेमें समर्थ न हो सकेंगे, नगरके किनारे उतरे । तत्पश्चात् नौवीं फरवरीको युद्ध हुआ । तीन घंटेकी भीषण लड़ाईके बाद विद्रोहियोंकी जहाजी फौजका पराजय हुआ । कुछ लोगोंने भाग कर अपनी नावोंकी शरण ली, और शेष हमारे हाथ कैदी होगये । प्रिय काकाजी, आप यह न समझें कि जिस पद पर मैं अधिष्ठित हूँ उसे मैंने सहजहीमें प्राप्त कर लिया है । मैंने कभी अपने दिलमें इस बातकी कल्पना भी नहीं की थी कि मैं किसी समय यहाँकी फौजमें अफसर बन सकूँगा । अक्सर मेरी तरक्कीकी बात उठती थी, लेकिन अधिकारी लोग केवल इसी कारणसे कि मैं विदेशी हूँ मेरा नाम सूचीमेंसे काट देते थे । फिर जब विद्रोहाग्नि भड़की तब मैं और मेरे दूसरे साथी एक जनरलके अधीन काम करते थे । उक्त जनरल यद्यपि मुझसे परिचित नहीं थे, लेकिन युद्धके समयमें मैंने जितनी होशियारीके साथ काम किया उसपर उन्होंने ख्याल किया था, और शत्रुओंके गोलोंकी वर्षामें मैंने जैसे असीम साहससे प्रवेश किया था उसे भी उन्होंने देखा था । इसके बाद उन्होंने इस बातके जाननेकी बिल्कुल पर्वाह नहीं की कि मैं देशी हूँ या विदेशी । मेरे कौशलको ही मेरे लिये यथेष्ट सहायक समझकर उन्होंने प्रजातंत्र राज्यके सहकारी प्रेसीडेण्टके निकट मेरे कार्य्यकी रिपोर्ट की । मैं लैफ्टीनेण्टके पद पर नियुक्त कर दिया गया, और इसी पद पर रहकर निथेरायके निर्णयात्मक युद्धमें मैंने जो सहायता दी उसे आप जानते ही हैं ।

इसके साथ ही मैं आपके पास निथेरायके युद्धका एक खाका भेजता हूँ। इसी स्थान पर मेरे साथी मुझसे बहुत डरते थे, यद्यपि मैंने उनके साथ कभी बुरा व्यवहार नहीं किया । आप सब लोगोंने मुझे लिखा है कि मैं इस युद्धका पूरा पूरा वर्णन आपको लिखूँ, किन्तु काकाजी युद्धके समान भयंकर वस्तुका क्या वर्णन किया जावे ? उसका वर्णन करना

ही भयंकर है । युद्धमें जीवन, जो संसारमें सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु है, जगतकी सबसे सस्ती चीजकी तरह बिकता है । इसमें अपने जीवनकी जो सबसे कम चिन्ता करता है वही उसकी सबसे अधिक रक्षा कर सकता है। दुनियामें साहस क्या चीज है ? अपनी इष्ट वस्तुके लिये अविचलित रूपसे और दृढ़प्रतिज्ञ होकर जीवन समर्पण करनेका ही नाम साहस है । जब तक शत्रु दूर पर रहते हैं, तब तक विविध विचार और तर्क वितर्क करके अपनी अकल चलाना बहुत आसान है, लेकिन जब दुश्मन नजदीक और सामने आजावें तब सिर्फ एक ही उपाय अपने पास रहता है—यानी समग्र सेना इकट्ठी करके आगे बढ़ना। जो जितनी शीघ्रतासे अग्रसर हो सकता है वह शत्रुओंको उतना ही अधिक आतङ्कित कर सकता है।

आप मेरे जीवनके और भी विशेष हाल जानना चाहते हैं । पृथ्वीके जिन जिन देशोंकों मैं गया हूँ, वहींसे मैंने आपको पत्र भेजे हैं । क्या मैंने आपको नहीं लिखा कि सर्कसके साथ सिंहपालक होकर मैं समग्र यूरोपमें घूम चुका हूँ, और पिंजरबद्ध वन्य पशुओंको मैंने खेल सिखलाये हैं ? इस पत्रके साथ ही मैं आपको बेनस एरेस नामक स्थानसे प्रकाशित होनेवाले एक समाचारपत्रकी प्रति भेजता हूँ । उसमें मेरा जीवनचरित्र छपा है ।

भवदीय स्नेहाधीन,
सुरेश ।

(६)

रायों, १२ वीं अप्रैल १८९७ ।

प्रिय काका महाशय,

मुझे खेद है कि अपने १५ नवम्बरके पत्रका मुझे कुछ उत्तर नहीं मिला। इस पत्रके साथ ही मैंने अखबारों तथा अन्यान्य आवश्यकीय

कागजपत्रोंका एक पैकट भेजा था । मेरी तन्दुरुस्ती अब अच्छी है । बड़ी प्रसन्नताके साथ मैं आपको बतलाता हूँ कि मैंने अपने आत्मचरितका बहुतसा भाग लिख लिया है । इसके पूर्ण करनेमें अवश्य ही विलम्ब लगेगा । आजकल मेरे पास कामकी इतनी भीड़ रहती है कि उसके लिखनेके लिये मुझे वक्त ही नहीं रहता, लेकिन मुझे आशा है कि कुछ समयमें मैं उसे समाप्त कर लूँगा । काकाजी, ज्योतिष पढ़नेका मुझे बड़ा शौक है, और बहुत दिनोंसे मैं इसे बड़े ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहता हूँ। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि आप मेरे लिये कष्ट उठाकर मेरे जन्मकी ठीक ठीक तिथि लिख भेजें । मैं जन्मकुंडली बनाना चाहता हूँ, जिससे कि मैं जान सकूँ कि जिस दिन मेरा जन्म हुआ था उस दिन ग्रह, उपग्रह और नक्षत्रोंकी स्थिति क्या थी ? इस जन्मकुंडलीके होनेपर भावी विपत्ति और कष्टोंका वृत्तान्त ज्ञात हो सकेगा और मैं उनके शान्त होनेका उपाय कर सकूँगा । मैंने और भी कितने ही विज्ञानोंका अध्ययन किया है जिनसे कि ये ही फल निकलें। लेकिन मैं उन विज्ञानोंकी तुलना ज्योतिषसे करना चाहता हूँ। सामुद्रिक और अन्यान्य लाक्षणिक विद्याओंके जरियेसे मैंने यह जान लिया है कि वृहस्पति, मङ्गल, शुक्र और चन्द्रमा इन ग्रहोंका मेरे ऊपर बहुत ज्यादः प्रभाव है । चन्द्रग्रहने मुझको काल्पनिक बना दिया है, और मेरी समुद्रयात्राका कारण यही ग्रह है। अपने विचारोंको कार्य्यरूपमें परिणत करनेका ज्ञान और बल मुझे शुक्रने दिया है । मंगलने मुझे सैनिक साहस और हठकारिता प्रदान की है । और वृहस्पतिके प्रभावसे मेरा परिचय बहुतसी स्त्रियोंसे हुआ है । मैं यह भी जानता हूँ कि बुध, शनि, और रवि इत्यादि अन्यान्य ग्रहोंकी भी थोड़ी बहुत दृष्टि मेरे ऊपर है । उनका फल जाननेके लिये मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ, और इसीलिये उनका स्थान निर्णय करना बहुत जरूरी है । काकाजी, यह तो आप जानते ही हैं कि यूरोपमें यात्रा करते समय मैंने यूरोपके

सर्वाग्रगण्य अध्यापकोंके निकट इन सब शास्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त की थी। भविष्यमें मैं आपको उनके नाम धाम बतलाऊँगा । परमेश्वरकी कृपासे यदि जीवित रहा तो मैं सम्मोहन-तत्त्व ज्योतिष और अन्यान्य गुह्य विज्ञानोंको अच्छी तरह पढ़ूँगा, और इन सब विषयोंमें विशेष गति प्राप्त करूँगा। इन्हीं सब विद्याओंके बलसे हमारे प्राचीन भारतवर्षीय मनस्वी लोग सर्वलोकाराध्य निर्वाण प्राप्त करते थे, और इन्हींके जरियेसे आजकल भी कितने ही संन्यासी नाना प्रकारकी अद्भुत क्रिया-ओंकी साधना करते हैं—जैसे जमीनके भीतर इच्छानुसार चाहे जब तक दबे रहना, कुछ मिनटोंमें ही बीजका पौधा बना देना और उसमें फल लगा देना, इत्यादि । ये अलौकिक कार्य्य इसी विद्याके फल हैं । मैं नहीं जानता कि आपको इन बातोंमें कुछ दिलचस्पी है या नहीं। यदि इनसे आपका मनोरंजन होता हो, तो फिर किसी दिन मैं इनकी विशदरूपसे विवेचना वा विश्लेषण करके आपको बतला दूँगा। अगर इन सब बातोंमें आपका विश्वास न हो तो कमसे कम अपने वंशके युवकोंके लिये तो मैं यश और सम्मानके पथका प्रदर्शक बनूँगा ही। कृपा करके मेरे पिताजीके समाचार लिखिये । मैं जानता हूँ कि वे अत्यन्त अस्वस्थ होंगे। यह अस्वस्थता शारीरिक न होगी तो मानसिक तो अवश्य ही होगी। कौन जानता है कि उनकी अवस्था जाननेपर मैं उनकी कुछ न कुछ सेवा न कर सकूँ । मुझे मालूम नहीं है कि वे घर पर हैं या नहीं, इसी लिये उनको पत्र नहीं लिखता।

कलकत्तेके अनेक नवयुवकोंने मेरे पास बहुतसे पत्र भेजकर यह पूँछा है कि उनके ब्रेजिल पहुँचनेका कुछ उपाय है या नहीं ? मैं अलग अलग उनकी चिट्ठियोंका जवाब दूँगा।

कृपया मेरे सम्बन्धियों तथा मित्रोंसे मेरा यथोचित अभिवादन कह दीजिये ।

भवदीय स्नेहाधीन
सुरेश ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ।

हमारे यहाँसे इस नामकी एक ग्रन्थमाला प्रकाशित होती है । हिंदी-संसारमें यह अपने ढंगकी अद्वितीय है । अभी तक इसमें जितने ग्रन्थ निकले हैं वे भाव, भाषा, छपाई, सौन्दर्य आदि सभी दृष्टियोंसे बेजोड़ हैं । प्रायः सभी साहित्य-सेवियोंने उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है । स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं । स्थायी ग्राहक होनेकी 'प्रवेश-फी' आठ आने है । अभी तक नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं:—

१-२ स्वाधीनता । जान स्टुअर्ट मिलके 'लिबर्टी' नामक ग्रन्थका अनुवाद और मूल लेखकका लगभग ६० पृष्ठका जीवनचरित । मू० २)

३ प्रतिभा । शिक्षाप्रद और भावपूर्ण उपन्यास । तृतीयावृत्ति । मूल्य १।)

४ फूलोंका गुच्छा । उच्च श्रेणीकी ११ गल्पोंका संग्रह । तृतीयावृत्ति ॥-)

५ आँखकी किरकिरी । डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ टागोरके 'चोखेर बालि' नामक प्रसिद्ध उपन्यासका अनुवाद । तृतीयावृत्ति । मूल्य १॥=)

६ चौबेका चिट्ठा । बंग-साहित्य-सम्राट् स्वर्गीय बंकिम बाबूके ज्ञान-विज्ञान-देशभक्तिपूर्ण हास्य ग्रंथका अनुवाद । तृतीयावृत्ति । मूल्य ॥।)

७ मितव्ययता । सेमुएल स्माइल्स साहबके 'थिरिफ्ट' नामक ग्रंथके आधारसे लिखित । तृतीयावृत्ति । मू० ॥।≡)

८ स्वदेश । डा० सर रवीन्द्रनाथ टागोरके चुने हुए स्वदेशसम्बन्धी निबन्धोंका अनुवाद । तृतीयावृत्ति । मू० ॥=)

९ चरित्र-गठन और मनोबल । राल्फ वाल्डो ट्राइनके 'कैरेक्टर बिल्डिंग थाट पावर'का अनुवाद । तृतीयावृत्ति । मू० ≡)

१० आत्मोद्धार । प्रसिद्ध हबशी विद्वान् बुकर टी० वाशिंगटनका आत्मचरित । द्वितीयावृत्ति । मू० १)

११ शांतिकुटीर । उत्कृष्ट उपन्यास । द्वितीयावृत्ति । मू० ॥।=)

१२ सफलता और उसकी साधनाके उपाय । कई अँगरेजी पुस्तकोंके आधारसे लिखित । द्वितीयावृत्ति । मू० ॥।)

१३ अन्नपूर्णाका मन्दिर । अतिशय हृदयभेदी, करुणरसपूर्ण और शिक्षाप्रद उपन्यास । द्वितीयावृत्ति । मूल्य ॥।)

१४ स्वावलंबन । सेमुएल स्माइल्सके 'सेल्फ-हेल्प' नामक ग्रंथके आधारसे लिखित । द्वितीय संस्करण । मू० १॥)

१५ उपवास-चिकित्सा । उपवास या लंघनसे तमाम रोगोंको नष्ट करनेका उपाय । द्वितीयावृत्ति । मू० ॥।)

१६ सूमके घर धूम । सभ्य हास्यरसपूर्ण प्रहसन । द्वितीयावृत्ति । मू० ≡)

१७ दुर्गादास । प्रसिद्ध स्वामिभक्त वीर दुर्गादासके ऐतिहासिक चरित्रको लेकर इस नाटककी रचना की गई है । द्वितीयावृत्ति । मू० १)

१८ बंकिम-निबन्धावली । स्वर्गीय बंकिम बाबूके चुने हुए उत्कृष्ट निबन्धोंका अनुवाद । द्वितीयावृत्ति । मू० ॥।=)

१९ छत्रसाल । बुंदेलखण्डकेसरी छत्रसालके ऐतिहासिक चरित्रके आधारपर लिखा हुआ देशभक्तिपूर्ण उपन्यास । द्वितीयावृत्ति । मू० १॥)

२० प्रायश्चित्त । बेलजियमके सर्वश्रेष्ठ कवि मेटरलिंकके एक भावपूर्ण नाटकका हिन्दी अनुवाद । द्वितीयावृत्ति । मू० ।)

२१ अब्राहम लिंकन । गुलामोंको स्वाधीन करनेवाले अमेरिकाके प्रसिद्ध प्रेसीडेण्टका जीवनचरित । मू० ॥=)

२२ मेवाड-पतन । बंग-लेखक द्विजेन्द्रलाल रायके अपूर्व ऐतिहासिक नाटकका अनुवाद । द्वितीयावृत्ति । मू० ॥।)

२३ शाहजहाँ । द्विजेन्द्रबाबूका ऐतिहासिक नाटक । मू० ॥।=)

२४ मानव-जीवन । सदाचारसम्बन्धी उत्कृष्ट ग्रंथ । मूल्य १।=)

२५ उस पार । द्विजेन्द्रबाबूके एक अतिशय हृदयद्रावक और शिक्षाप्रद सामाजिक नाटकका अनुवाद । मूल्य १)

२६ ताराबाई । द्विजेन्द्रबाबूके एक पद्य नाटकका अनुवाद । हिन्दीमें सबसे पहला खड़ी बोलीका पद्य नाटक । मूल्य १)

२७ देश-दर्शन । द्वितीयावृत्ति । मूल्य २।)

२८ हृदयकी परख । स्वतंत्र और भाव-पूर्ण उपन्यास । मूल्य ॥।=)

२९ नवनिधि । सुप्रसिद्ध गल्प-लेखक श्रीयुत प्रेमचंदजीकी एकसे एक बढ़कर सुन्दर और भावपूर्ण नौ गल्पें । मूल्य ॥।=)

३० नूरजहाँ । स्वर्गीय द्विजेंद्रलालरायका प्रसिद्ध नाटक । मूल्य १)

३१ आयर्लैण्डका इतिहास । स्वराज्यवादियोंके लिए पठनीय । १॥।=)

३२ शिक्षा । डा० सर रवीन्द्रनाथ टागोरके महत्त्वपूर्ण निबंध । मू०॥-)

३३ भीष्म । स्व० द्विजेन्द्रबाबूका पौराणिक नाटक । मू० १=)

३४ कावूर । इटली राष्ट्रके बनानेवाले प्रसिद्ध नेताका जीवनचरित । मू०१)

३५ चन्द्रगुप्त । ३६ सीता । द्विजेंद्रबाबूके नाटक । मू०१) और ॥-)

३७ छाया-दर्शन । परलोक-विज्ञानसम्बधी अपूर्व ग्रंथ । मूल्य १।)

३८ राजा और प्रजा । रवीन्द्रबाबूके राजनीतिके निबंध । मू० १)

३९ गोबर-गणेश-संहिता । व्यंग-वक्रोक्तिपूर्ण गद्यकाव्य । मू० ॥-)

नोट—उपर्युक्त पुस्तकोंकी जो कीमत छपी है वह सादी जिल्दकी है । कपड़ेकी जिल्दवाली पुस्तकोंकी कीमत चार छह आने ज्यादे है ।

हमारी अन्यान्य पुस्तकें ।

१ व्यापार-शिक्षा । व्यापारसम्बन्धी प्रारंभिक पुस्तक । द्वितीयावृत्ति । ॥-)

२ युवाओंको उपदेश । विलीयम कावेटके "एडवाईस टू यंगमेन" के आधारसे लिखित । द्वितीयावृत्ति । मूल्य ॥-)

३ कनकरेखा । उच्चश्रेणीकी भावपूर्ण गल्पोंका संग्रह । मूल्य ॥।)

४ शान्तिवैभव । 'मैजेस्टी आफ कामनेस'का अनुवाद । द्वितीयावृत्ति ।-)

५ लन्दनके पत्र । विलायतसे एक देशभक्त भारतवासीकी भेजी हुई देशभक्तिपूर्ण शिक्षाप्रद चिठ्ठियोंका संग्रह । मूल्य ≥)

६ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा । द्वितीयावृत्ति । मू० =)॥

७ ब्याही बहू । जो लड़कियाँ ससुराल जानेवाली हैं या जा चुकी हैं, उनके लिए बहुत ही उपयोगी । द्वितीयावृत्ति । मू० ≥)

८ पिताके उपदेश । एक सुशिक्षित पिताके अपने विद्यार्थी पुत्रके नाम भेजे हुए सदुपदेशपूर्ण पत्रोंका संग्रह । तृतीयावृत्ति । मूल्य ≥)

९ सन्तान-कल्पद्रुम । इसमें वीर, विद्वान् और सद्गुणी संतान उत्पन्न करनेके विषयमें वैज्ञानिक पद्धतिसे विचार किया गया है । मू० ।॥)

१० मणिभद्र । एक जैनकथानकके आधारपर लिखा हुआ सुन्दर भावपूर्ण उपन्यास । कई अच्छे अच्छे चित्र हैं । मू० ॥=)

११ कोलम्बस । नई दुनियाका पता लगानेवाले प्रसिद्ध उद्योगी और साहसी नाविकका जीवन-चरित । मू० ।॥)

१२ ठोक पीटकर वैद्यराज । मौलियरके फ्रेंच प्रहसनका सुन्दर हिन्दी रूपान्तर । अतिशय हास्यप्रद । मू० ।-)

१३ बूढेका ब्याह । खड़ी बोलीका सचित्र काव्य । द्वितीयावृत्ति । मू० ।=)

१४ दियातले अँधेरा (गल्प) । मू० -)॥

१५ भाग्यचक्र । (गल्प) मू० -)

१६ विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य । तृतियावृत्ति । मू० -)

१७ सदाचारी बालक । एक शिक्षाप्रद कहानी । मू० =)

१८ बच्चोंके सुधारनेका उपाय । बुरेसे बुरे बच्चोंको सदाचारी, सुशील, विनयी और बुद्धिमान बनानेके उपाय । मू० ॥)

१९ अस्तोदय और स्वावलम्बन । अर्थात् गिरना, उठना और अपने पैरों खड़े होना । स्वावलंबनकी शिक्षा देनेवाली अपूर्व पुस्तक । मू० १)

२० देव-दूत । देशभक्तिपूर्ण खण्डकाव्य । ले०, सुकवि पं० रामचरित उपाध्याय । मूल्य ।=)

२१ विधवा-कर्तव्य । एक अनुभवी विद्वानकी लिखी हुई । मू० ॥)

२२ भारत-रमणी । द्विजेन्द्रबाबूका सुप्रसिद्ध सामाजिक नाटक । मू० ।॥=)

२३ योग-चिकित्सा । मू० =), **२४ दुग्ध-चिकित्सा** =)

२५ प्राकृतिक-चिकित्सा ।=), **२६ श्रमण नारद** =)

२७ अंजना-पवनंजय काव्य । मू० =)॥

मिलनेका पता:—मैनेजर, **हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग; पो० गिरगाँव, बम्बई ।